* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य ८ रुपये

रथारूढ़ श्रीकृष्ण और अर्जुन

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

ॐ नमः शिवायै गङ्गायै शिवदायै नमो नमः। नमस्ते विष्णुरूपिण्यै ब्रह्ममूर्त्यै नमोऽस्तु ते॥
नमस्ते रुद्ररूपिण्यै शाङ्कर्यै ते नमो नमः। सर्वदेवस्वरूपिण्यै नमो भेषजमूर्तये॥

वर्ष ९०

गोरखपुर, सौर पौष, वि० सं० २०७३, श्रीकृष्ण-सं० ५२४२, दिसम्बर २०१६ ई०

संख्या १२

पूर्ण संख्या १०८१

जय जय जय गणपति गणनायक!

जय जय जय गणपति गणनायक!
करुणासिन्धु, बन्धु जन-जनके, सिद्धि-सदन, सेवक-सुखदायक॥
कृष्णस्वरूप, अनूप-रूप अति, विघ्न-बिदारण, बोध-विधायक।
सिद्धि-बुद्धि-सेवित, सुषमानिधि, नीति-प्रीति-पालक, वरदायक॥
शंकर-सुवन, भुवन-भय-वारण, वारन-वदन, विनायक-नायक।
मोदकप्रिय, निज-जन-मन-मोदक, गिरि-तनया-मन-मोद-प्रदायक॥
अमल, अकल अरु सकल-कलानिधि, रिद्धि-सिद्धिदायक, सुरनायक।
ज्ञान-ध्यान-विज्ञान दान करि, निज-जन-मनवाञ्छित फल-दायक॥
प्रथम-पूज्य, सुरसेव्य एक-रद, सदा एकरस, खल-दल-शायक।
बिद्या-बल-विवेक-वर-वारिधि, विश्ववन्द्य, विबुधाधिप-नायक॥
चरण-शरण-जन जानि दयानिधि! देहु एक यह वर वरदायक।
जन-जनमें हो नीति-प्रीति नित, रहे न कोउ विषय-विष-पायक॥

(स्वामी सनातनदेव)

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,१५,०००)

कल्याण, सौर पौष, वि० सं० २०७३, श्रीकृष्ण-सं० ५२४२, दिसम्बर २०१६ ई०

विषय-सूची

चित्र-सूची

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क सजिल्द ₹२२०

पंचवर्षीय शुल्क सजिल्द ₹११००

विदेशमें Air Mail सजिल्द शुल्क — वार्षिक US$ 50 (₹3000), पंचवर्षीय US$ 250 (₹15,000) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**

आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**

सम्पादक—**राधेश्याम खेमका**, सहसम्पादक—**डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़**

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | **09235400242/244**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।**

Online सदस्यता-शुल्क-भुगतानहेतु-gitapress.org पर **Online Magazine Subscription** option को click करें।

अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर निःशुल्क पढ़ें।

कल्याण

याद रखो—जो पुरुष भगवान्‌का होकर कामना और अपेक्षाके फन्देसे निकल गया है, वही सदा सुखी है। उसकी शान्तिको भंग करे, ऐसा जगत्‌में कोई कारण नहीं है।

याद रखो—जिसको भगवान्‌की कृपापर भरोसा है और उनके न्यायपर विश्वास है, उसको संसारकी कोई भी स्थिति विचलित नहीं कर सकती।

याद रखो—जो सांसारिक पदार्थोंकी कोई परवाह न करके केवल भगवान्‌से ही प्रेम करता है, जगत्‌की सारी वस्तुएँ और सारी परिस्थितियाँ स्वाभाविक ही उसके कल्याणमें लग जाती हैं।

याद रखो—जो भगवान्‌का अनन्य आश्रय लेकर निश्चिन्त हो रहा है, उसको अपने योग-क्षेमकी चिन्ता कभी नहीं सताती। उसके लिये जो कुछ उचित, हितकर और आवश्यक होता है, भगवान् स्वयं ही उसकी रक्षा और पूर्तिकी व्यवस्था कर देते हैं।

याद रखो—जिसकी आवश्यकताका पता भी सर्वज्ञ भगवान् लगाते हैं और उसकी ठीक समयपर पूरी मात्रामें पूर्तिकी व्यवस्था भी सर्वशक्तिमान् और परम सुहृद् भगवान् ही करते हैं, उसकी यथार्थ आवश्यकताकी पूर्ति हुए बिना कभी रहती नहीं और अनावश्यक आवश्यकताका बोध उसको कभी सताता नहीं।

याद रखो—जिसके योगक्षेमका भार भगवान्‌ने उठा लिया है, उसको कभी किसी प्रकारसे हानि होगी—यह तो मानना ही मूर्खता है। उसकी कभी कोई हानि होती दिखायी देगी तो वह किसीकी उस गन्दी और तुच्छ-सी झोंपड़ीको ढहाने-जैसी ही होगी, जो विशाल सुन्दर महल बनानेके लिये ढहायी जाती है।

याद रखो—जिसकी दृष्टि बहुत ही छोटी-सी सीमामें बँधी रहती है, उसीको प्रत्यक्षवादी कहते हैं और वही भविष्यके सुन्दर परिणामको न जाननेके कारण वर्तमानमें दीखनेवाली कल्पित हानिसे भयभीत होकर शोकमें डूब जाता है। दूरदर्शी पुरुष भविष्यको देखते हैं और भविष्यके सुन्दर परिणामके लिये वर्तमानके कष्टोंको सहर्ष स्वीकार करते हैं एवं उन्हें तपस्या समझकर सुखका अनुभव करते हैं।

याद रखो—जो भगवान्‌की कृपामें विश्वास करते हैं और भगवान्‌के ऊपर अपनेको छोड़ देते हैं, वे इस बातकी ओर ताकते ही नहीं कि हमारी बड़ी हानि हो रही है। वे जानते हैं कि किसी परम लाभके लिये ही यह हानि हो रही है; क्योंकि मंगलमय भगवान्‌के विधानमें अमंगलके लिये गुंजाइश ही नहीं है।

याद रखो—जो भगवान्‌में यथार्थ विश्वास रखते हैं, उनका बीमा भगवान्‌के यहाँ हो जाता है। यहाँकी बीमा-कम्पनियाँ तो फेल भी हो सकती हैं, पर वह बीमा लेनेवाला ऐसा पूर्ण है कि सब कुछ देनेपर भी उसका फण्ड उतना-का-उतना अपार ही रहता है। वह जिसका बीमा ले लेता है, उसको सर्वत्र सर्वथा और सर्वदाके लिये अभय कर देता है और यह बीमा हर साल बार-बार नहीं कराना पड़ता। जो एक बार सच्चे हृदयसे अपनेको श्रीभगवान्‌के चरणोंपर डालकर उनकी शरण ले लेता है, उसका उसी क्षण सदाके लिये कभी Lapse (नष्ट) न होनेवाला अखण्ड बीमा हो जाता है।

याद रखो—जो भगवच्चरणोंके शरणागत हो गया है, उसीका मानव-जन्म और मानव-जीवन सफल हुआ है। भोगोंके आश्रय में पड़ा हुआ मनुष्य तो—जीवनकी सफलता तो दूर—उलटे नरकोंमें तथा आसुरी योनियोंमें जानेकी तैयारी कर रहा है। उसका जीवन व्यर्थ ही नहीं, बल्कि आनेवाले भयानक दुःखोंका महान् कारण है।

याद रखो—जिसने भगवच्चरणोंका आश्रय ग्रहण कर लिया है; वह स्वयं ही अपार दुःखसागरसे नहीं तरता—उसके साथ बातचीत करनेवाले, मिलनेवाले, उससे प्रेम करनेवाले, उसके सहवासमें रहनेवाले, उसके मित्र-बान्धव-कुटुम्बी और सेवकतकके तरनेका साधन बन जाता है। बस, ऐसा ही पुरुष जगत्‌में धन्य है। उसीके माता-पिता धन्य हैं और वह भूमि भी धन्य है, जिसमें ऐसा भगवच्चरणारविन्द-चंचरीक प्रेमी भक्त पुरुष प्रकट हुआ।

'शिव'

आवरणचित्र-परिचय श्रीकृष्णद्वारा अर्जुनको उपदिष्ट गीताका सार

१. सांसारिक मोहके कारण ही मनुष्य 'मैं क्या करूँ और क्या नहीं करूँ'—इस दुविधामें फँसकर कर्तव्यच्युत हो जाता है। अत: मोह या सुखासक्तिके वशीभूत नहीं होना चाहिये।

२. शरीर नाशवान् है और उसे जाननेवाला शरीरी अविनाशी है—इस विवेकको महत्त्व देना और अपने कर्तव्यका पालन करना—इन दोनोंमेंसे किसी भी एक उपायको काममें लानेसे चिन्ता-शोक मिट जाते हैं।

३. निष्कामभावपूर्वक केवल दूसरोंके हितके लिये अपने कर्तव्यका तत्परतासे पालन करनेमात्रसे कल्याण हो जाता है।

४. कर्मबन्धनसे छूटनेके दो उपाय हैं—कर्मोंके तत्त्वको जानकर नि:स्वार्थभावसे कर्म करना और तत्त्वज्ञानका अनुभव करना।

५. मनुष्यको अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियोंके आनेपर सुखी-दुखी नहीं होना चाहिये; क्योंकि इनसे सुखी-दुखी होनेवाला मनुष्य संसारसे ऊँचा उठकर परम आनन्दका अनुभव नहीं कर सकता।

६. किसी भी साधनसे अन्त:करणमें समता आनी चाहिये। समता आये बिना मनुष्य सर्वथा निर्विकल्प नहीं हो सकता।

७. सब कुछ भगवान् ही हैं—ऐसा स्वीकार कर लेना सर्वश्रेष्ठ साधन है।

८. अन्तकालीन चिन्तनके अनुसार ही जीवकी गति होती है। अत: मनुष्यको हरदम भगवान्का स्मरण करते हुए अपने कर्तव्यका पालन करना चाहिये, जिससे अन्तकालमें भगवान्की स्मृति बनी रहे।

९. सभी मनुष्य भगवत्प्राप्तिके अधिकारी हैं, चाहे वे किसी भी वर्ण, आश्रम, सम्प्रदाय, देश, वेश आदिके क्यों न हों।

१०. संसारमें जहाँ भी विलक्षणता, विशेषता, सुन्दरता, महत्ता, विद्वत्ता, बलवत्ता आदि दीखे, उसको भगवान्का ही मानकर भगवान्का ही चिन्तन करना चाहिये।

११. इस जगत्को भगवान्का ही स्वरूप मानकर प्रत्येक मनुष्य भगवान्के विराट्रूपके दर्शन कर सकता है।

१२. जो भक्त शरीर-इन्द्रियाँ-मन-बुद्धिसहित अपने-आपको भगवान्के अर्पण कर देता है, वह भगवान्को प्रिय होता है।

१३. संसारमें एक परमात्मतत्त्व ही जाननेयोग्य है। उसको जाननेपर अमरताकी प्राप्ति हो जाती है।

१४. संसार-बन्धनसे छूटनेके लिये सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणोंसे अतीत होना जरूरी है। अनन्यभक्तिसे मनुष्य इन तीनों गुणोंसे अतीत हो जाता है।

१५. इस संसारका मूल आधार और अत्यन्त श्रेष्ठ परमपुरुष एक परमात्मा ही हैं—ऐसा मानकर अनन्यभावसे उनका भजन करना चाहिये।

१६. दुर्गुण-दुराचारोंसे ही मनुष्य चौरासी लाख योनियों एवं नरकोंमें जाता है और दु:ख पाता है। अत: जन्म-मरणके चक्रसे छूटनेके लिये दुर्गुण-दुराचारोंका त्याग करना आवश्यक है।

१७. मनुष्य श्रद्धापूर्वक जो भी शुभ कार्य करे, उसको भगवान्का स्मरण करके नामका उच्चारण करके ही आरम्भ करना चाहिये।

१८. सब ग्रन्थोंका सार वेद हैं, वेदोंका सार उपनिषद् हैं, उपनिषदोंका सार गीता है और गीताका सार भगवान्की शरणागति है। जो अनन्यभावसे भगवान्की शरण हो जाता है, उसे भगवान् सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर देते हैं।

मैं कौन हूँ और मेरा क्या कर्तव्य है ?

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

प्रत्येक मनुष्यको विचार करना चाहिये कि 'मैं कौन हूँ' और 'मेरा क्या कर्तव्य है ?' मैं नाम, रूप—देह, इन्द्रिय, मन या बुद्धि हूँ या इनसे कोई भिन्न वस्तु हूँ ? विचारपूर्वक निर्णय करनेसे यही बात ठहरती है कि मैं नाम नहीं हूँ, मुझे आज जयदयाल कहते हैं, परंतु जब प्रसव हुआ था, उस समय इसका नाम जयदयाल नहीं था। यद्यपि मैं मौजूद था। घरवालोंने कुछ दिन बाद नामकरण किया। उन्होंने उस समय जयदयाल नाम न रखकर महादयाल रखा होता तो आज मैं महादयाल कहलाता और अपनेको महादयाल ही समझता! मैं न पूर्वजन्ममें जयदयाल था, न गर्भमें जयदयाल था और न शरीरनाशके बाद जयदयाल रहूँगा। यह तो केवल घरवालोंका निर्देश किया हुआ सांकेतिक नाम है। यह नाम एक ऐसा कल्पित है कि जो चाहे जब बदला जा सकता है और उसीमें उसका अभिमान हो जाता है। जो विवेकवान् पुरुष इस रहस्यको समझ लेता है कि मैं नाम नहीं हूँ, वह नामकी निन्दा-स्तुतिसे कदापि सुखी-दुखी नहीं होता। जब वह मनुष्य 'नाम' की निन्दा-स्तुतिमें सम नहीं है, निन्दा-स्तुतिमें सुखी-दुखी होता है तब वह नाम न होनेपर भी 'नाम' बना बैठा है, जो सर्वथा भ्रमपूर्ण है। जो इस रहस्यको जान लेता है, उसमें इस भ्रमकी गन्धमात्र भी नहीं रहती। इसीलिये श्रीभगवान्ने तत्त्ववेत्ता पुरुषोंके लक्षणोंको बतलाते हुए उन्हें निन्दा और स्तुतिमें सम बतलाया है—

'तुल्यनिन्दास्तुतिः……' (गीता १२। १९)

'तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः' (गीता १४। २४)

फिर यह प्रसिद्ध भी है कि जयदयाल 'मेरा' नाम है, 'मैं' जयदयाल नहीं हूँ। इससे यह सिद्ध हुआ नाम 'मैं' नहीं हूँ।

इसी प्रकार रूप—देह भी मैं नहीं हूँ; क्योंकि देह जड है और मैं चेतन हूँ, देह क्षय, वृद्धि, उत्पत्ति और विनाशधर्मवाला है, मैं इनसे सर्वथा रहित हूँ। बालकपनमें देहका और ही स्वरूप था, युवापनमें दूसरा था और अब कुछ और ही है, किंतु मैं तीनों अवस्थाओंको जाननेवाला तीनोंमें एक ही हूँ। किसी पुरुषने मुझको बाल्यावस्थामें देखा था, अब वह मुझसे मिलता है तो मुझे पहचान नहीं सकता। देहका रूप बदल गया। शरीर बढ़ गया, दाढ़ी-मूँछें आ गयीं। इससे वह नहीं पहचानता। किंतु मैं पहचानता हूँ, मैं उससे कहता हूँ, आपका शरीर युवावस्थासे वृद्ध होनेके कारण उसमें कम अन्तर पड़ा है, इससे मैं आपको पहचानता हूँ। मैंने आपको अमुक जगह देखा था। उस समय मैं बालक था, अब मेरे शरीरमें बहुत परिवर्तन हो गया, अतः आप मुझे नहीं पहचान सके। इससे यह सिद्ध होता है कि शरीर 'मैं' नहीं हूँ। 'शरीर मैं हूँ' ऐसा अभिमान भी पूर्वोक्त नामके समान ही सर्वथा भ्रमपूर्ण है। जो पुरुष इस रहस्यको जानते हैं, वे शरीरके मानापमान और सुख-दुःखमें सर्वथा सम रहते हैं; क्योंकि वे इस बातको समझ जाते हैं कि मैं शरीरसे सर्वथा पृथक् हूँ। इसीलिये तत्त्ववेत्ताओंके लक्षणोंमें भगवान् कहते हैं—

'समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।'

(गीता १२। १८)

'मानापमानयोस्तुल्यः' (गीता १४। २५)

'समदुःखसुखः' (गीता १४। २४)

अतएव विचार करनेसे यह प्रत्यक्ष सिद्ध होता है कि यह जड शरीर मैं नहीं हूँ, मैं इस शरीरका ज्ञाता हूँ; और प्रसिद्धि भी यही है कि शरीर 'मेरा' है। मनुष्य भ्रमसे ही शरीरमें आत्माभिमान करके इसके मानापमान और सुख-दुःखसे सुखी-दुखी होता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि मैं शरीर नहीं हूँ।

इसी तरह इन्द्रियाँ भी मैं नहीं हूँ। हाथ-पैरोंके कट जाने, आँखें नष्ट हो जाने और कानोंके बहरे हो जानेपर भी मैं ज्यों-का-त्यों पूर्ववत् रहता हूँ, मरता नहीं। यदि मैं इन्द्रिय होता तो उनके विनाशमें मेरा विनाश होना सम्भव था। अतएव थोड़ा-सा भी विचार करनेपर यह प्रत्यक्ष प्रतीत होता है कि मैं जड इन्द्रिय नहीं हूँ, वरं इन्द्रियोंका द्रष्टा या ज्ञाता हूँ।

इसी प्रकार मैं मन भी नहीं हूँ। सुषुप्तिकालमें मन नहीं रहता, परंतु मैं रहता हूँ। इसीलिये जागनेके बाद मुझको इस बातका ज्ञान है कि मैं सुखसे सोया था। मैं मनका

ज्ञाता हूँ। दूसरोंकी दृष्टिमें भी मनके अनुपस्थितिकालमें (सुषुप्ति या मूर्छित-अवस्थामें) मेरी जीवित सत्ता प्रसिद्ध है। मन विकारी है, इसमें भाँति-भाँतिके संकल्प-विकल्प होते रहते हैं। मनमें होनेवाले इन सभी संकल्प-विकल्पोंका मैं ज्ञाता हूँ। खान, पान, स्नान आदि करते समय यदि मन दूसरी ओर चला जाता है तो उन कामोंमें कुछ भूल हो जाती है, फिर सचेत होनेपर मैं कहता हूँ, मेरा मन दूसरी जगह चला गया था, इस कारण मुझसे भूल हो गयी; क्योंकि मनके बिना केवल शरीर और इन्द्रियोंसे सावधानीपूर्वक काम नहीं हो सकता। अतएव मन चंचल और चल है परंतु मैं स्थिर और अचल हूँ। मन कहीं भी रहे, कुछ भी संकल्प-विकल्प करता रहे, मैं उसको जानता रहता हूँ, अतएव मैं मनका ज्ञाता हूँ, मन नहीं हूँ।

इसी तरह मैं बुद्धि भी नहीं हूँ; क्योंकि बुद्धि भी क्षय और वृद्धि-स्वभाववाली है। मैं क्षय-वृद्धिसे सर्वथा रहित हूँ। बुद्धिमें मन्दता, तीव्रता, पवित्रता, मलिनता, विकार, व्यभिचारादि होते हैं, परंतु मैं उसकी इन सब स्थितियोंको जाननेवाला हूँ। मैं कहता हूँ उस समय मेरी बुद्धि ठीक नहीं थी, अब ठीक है। बुद्धि कब क्या विचार रही है और क्या निर्णय कर रही है—इसको मैं जानता हूँ। बुद्धि दृश्य है, मैं उसका द्रष्टा हूँ। अतएव बुद्धिका मुझसे पार्थक्य सिद्ध है, मैं बुद्धि नहीं हूँ।

इस प्रकार मैं नाम, रूप—देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि प्रभृति नहीं हूँ। मैं इन सबसे सर्वथा अतीत, इनसे सर्वथा पृथक्, चेतन, साक्षी, सबका ज्ञाता, सत्, नित्य, अविनाशी, अविकारी, अक्रिय, सनातन, अचल और समस्त सुख-दु:खोंसे रहित केवल शुद्ध आनन्दमय आत्मा हूँ। यही मैं हूँ। यही मेरा सच्चा स्वरूप है।

क्लेश, कर्म और सम्पूर्ण पापोंसे विमुक्त होकर परम शान्ति और परमानन्दकी प्राप्तिके लिये ही मनुष्य-शरीरकी प्राप्ति हुई है। इस परम शान्ति और परमानन्दको प्राप्त करना ही मनुष्यका एकमात्र कर्तव्य है। मनुष्य-शरीरके बिना अन्य किसी भी देहमें इसकी प्राप्ति सम्भव नहीं है। इस स्थितिकी प्राप्ति तत्त्वज्ञानसे होती है और वह तत्त्वज्ञान विवेक, वैराग्य, विचार, सदाचार और सद्गुण आदिके सेवनसे होता है और इन सबका होना इस घोर कलिकालमें ईश्वरकी दयाके बिना सम्भव नहीं। यद्यपि ईश्वरकी दया सम्पूर्ण जीवोंपर पूर्णरूपसे सदा-सर्वदा है, किंतु बिना उनकी शरण हुए उस दयाके रहस्यको मनुष्य समझ नहीं सकता एवं दयाके तत्त्वको समझे बिना उस दयाके द्वारा होनेवाले लाभको वह प्राप्त नहीं कर सकता। अतएव तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिके लिये सब प्रकारसे ईश्वरके शरण होकर उनकी दयाके रहस्यको समझकर उससे पूर्ण लाभ उठाना चाहिये। ईश्वरकी शरणसे ही हमें परम शान्ति मिल सकती है। श्रीभगवान् कहते हैं—

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥

(गीता १८।६२)

'हे भारत! सब प्रकारसे उस परमेश्वरकी ही अनन्य शरणको प्राप्त हो, उस परमात्माकी कृपासे ही तू परम शान्ति और सनातन परम धामको प्राप्त होगा।'

जब यह मनुष्य परमेश्वरके शरण* होकर परमेश्वर तत्त्वको जान जाता है, तब उस परमेश्वरकी कृपासे अज्ञान नाश होकर वह परमेश्वरको प्राप्त हो जाता है। जैसे निद्राके नाशसे मनुष्य जाग्रत्को, दर्पणके नाशसे प्रतिबिम्ब बिम्बको तथा घटके फूटनेसे घटाकाश महाकाशको प्राप्त हो जाता है, इसी प्रकार अज्ञानके नाशसे यह जीवात्मा विज्ञानानन्दघन परमात्माको प्राप्त हो जाता है। जब यह साधक नाम, रूप—देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदिसे अपनेको सर्वथा पृथक् समझ लेता है, तब यह ईश्वरके शरण होकर ईश्वरकी कृपासे, देहादि सम्बन्धसे होनेवाले समस्त क्लेशों और पापोंसे सदाके लिये सर्वथा मुक्त हो जाता है एवं विज्ञानानन्दघन परमात्माका सनातन अंश होनेके कारण सदाके लिये उस विज्ञानानन्दघन प्रभुको प्राप्त हो जाता है। प्रभुको प्राप्त करनेके लिये अनन्यभावसे इस प्रकार प्रयत्न करना और प्रभुको प्राप्त हो जाना ही मनुष्यका परम कर्तव्य है।

---

* शरणका सार अर्थ है—श्रद्धा और प्रेमपूर्वक निष्काम भावसे प्रभुकी आज्ञाका पालन करना, गुण और प्रभावसहित उनके स्वरूपका चिन्तन करना एवं हमारे कर्मोंके अनुसार परमेश्वरकृत सुख-दु:खादि विधानमें सर्वथा समचित्त रहना। शरणागतिका विशेष वर्णन देखना हो तो 'तत्त्वचिन्तामणि' [कोड 683] नामक गीताप्रेससे प्रकाशित पुस्तक देखनी चाहिये।

भक्तकी बात

(स्वामी श्रीभोलेबाबाजी)

(१) संसार दुःखका भण्डार, निस्सार है, भगवद्-भजन ही सार है, जिसने ईश्वरकी शरण ली, उसका बेड़ा निश्चय होता पार है, जो ईश्वरसे विमुख हुआ, वह जन्मता-मरता बारम्बार है!

(२) भगवान्के अर्चनसे, भगवन्नामके जपसे, भगवन्मूर्तिके ध्यानसे, भगवद्गुण-कीर्तनसे, हरिके स्मरणसे, भगवान्की पुण्यकथाके श्रवणसे, भगवान्की वन्दना करनेसे, शिवके सेवनसे, भगवान्के चरणोदकका पान करनेसे, भगवान्को निवेदन किया हुआ भोजन करनेसे, भगवान्को सब कर्म अर्पण करनेसे, ईश्वरको आत्म-निवेदन करनेसे, भक्तोंके पुण्य संसर्गसे, पुण्यतीर्थके सेवन करनेसे मनुष्योंकी भगवान्में भक्ति उत्पन्न होती है।

(३) जहाँ श्रीहरिका पूजन और शंकरका स्मरण नहीं होता, वहाँ नित्य ही मनुष्य अपना सिर पीटते रहते हैं, इसमें संशय नहीं है और जहाँ ये दोनों होते हैं, वहाँ सदा शान्ति निवास करती है।

(४) तभीतक जन्म-मरणरूप संसार है, जबतक मुक्ति नहीं होती और विश्वनाथमें प्रीति हुए बिना करोड़ों जन्मोंमें भी मुक्ति होना सम्भव नहीं।

(५) जिनके चित्त काम-क्रोधसे अन्धे हो रहे हैं, जो अज्ञानी और संशय-आत्मा हैं, उनमें ब्रह्माण्डको पवित्र करनेवाला प्रेम होना दुर्लभ है।

(६) जो विषयोंमें दोष देखता है और जगन्नाथमें सुख, शान्ति एवं कल्याण देखता है, वह संसार-समुद्रसे शीघ्र ही पार हो जाता है।

(७) उत्तम कुलमें जन्म, यज्ञ-सूत्र, विद्या और दीक्षा निष्फल ही हैं, यदि मनुष्यकी आदि अव्यय पुरुष विष्णुमें भक्ति न हो।

(८) भक्तोंका हृदय-क्षेत्र मुकुन्द भगवान्का प्रिय मन्दिर है। भक्तोंके हृदयमें भगवान् लीला और विनोद करते हैं।

(९) भगवान्की महिमा भागवतमें—भक्तमें दिन-रात भासती है। सत्-शास्त्रका शुद्ध व्याख्यान भक्तका कर्म है।

(१०) ईश्वर दुर्विज्ञेय है, भक्तके देहद्वारा प्रकाशित होता है, इसलिये सुभक्तोंका संग मुक्तिका देनेवाला है।

(११) भक्तका अपना-पराया नहीं होता, समस्त वसुधा उसका कुटुम्ब है; क्योंकि सबमें वह एक अपने आत्मा महाविष्णुको ही देखता है।

(१२) धनसे क्लेश, मद, हिंसा उत्पन्न होती है और धर्मकी भी हानि होती है, इसलिये भक्त भवेश्वरसे धन नहीं माँगता, केवल भक्ति ही माँगता है।

(१३) देह दुःखमय, दीनतामय, अशुद्ध और विनश्वर है, ऐसा समझकर भक्त जनार्दनसे देहके सुखके लिये प्रार्थना नहीं करता, ईश्वरकी भक्तिके लिये ही प्रार्थना करता है।

(१४) कामसे वीर्य, धर्म, बुद्धि और सत्य सभीका नाश होता है, इसलिये भक्त सर्व कामनाओंको त्यागकर भगवच्चरणोंमें ही प्रीति करता है।

(१५) भोग-सुखकी तो बात ही क्या है, सच्चा भक्त दुर्लभ कैवल्य-पदकी भी वाञ्छा नहीं करता, किंतु भगवच्चरणाम्बुजकी दृढ़ भक्ति ही चाहता है।

(१६) भक्त सर्वदा इस प्रकार भगवान्से प्रार्थना करता है—हे भगवन्! मेरी वाणी सर्वदा आपके पवित्र नामका कीर्तन करे, मेरे हाथ निरन्तर आपके पाद-कमलोंका सेवन करें, मेरे श्रोत्र नित्य आपके कथामृतका पान करें, मेरा मन आपके शान्तिमय चरणोंका ही सदा स्मरण करे, मेरे हृदयाकाशमें कोटि सूर्यसम प्रभावाले आप निवास करें, हे जनार्दन! जब मेरा चित्त आपके चरणोंसे विमुख हो तब हे दयासागर! उसे अपने चरणोंमें ही लगा लीजिये। हे महेश्वर! मैं सदा आपका ही ध्यान करूँ, आपको ही सर्वत्र देखूँ, आपको ही नमस्कार करूँ,

ऐसा कीजिये। हे जगत्-बन्धो! आपको नमस्कार है। हे परमात्मन्! आपको नमस्कार है। हे विश्वेश्वर! आपको नमस्कार है। हे देवादिदेव, हे परिपूर्णस्वरूप! आपको नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है।

(१७) ब्रह्म ही केवल सत्य है, जगत् मिथ्या है, ब्रह्म ही मैं हूँ, मैं ही ब्रह्म है, ऐसा ज्ञान मुक्तिका देनेवाला है।

(१८) ध्यानसे निर्मल अन्तःकरणमें वैराग्य और ज्ञान उत्पन्न होता है, इसलिये नित्य शुद्ध और निर्मल मनकी अपेक्षा है। चाहे सगुण-साकारका ध्यान करे, चाहे निर्गुण-निराकारका ध्यान करे, अपने इष्टदेवको परिच्छिन्न कभी न समझे।

(१९) मनको निर्विषय करके परम अद्वय महाशम्भु देवका निरन्तर ध्यान करे।

(२०) ऊपर पूर्ण है, नीचे पूर्ण है, मध्य पूर्ण है, सदात्मक है, सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म है, पुरुष है, ब्रह्म है, विष्णु है, सर्वगत है, विभु है, अज है, सत्य है, ध्रुव है, नित्य है, शाश्वत है, सनातन है, निराकार है, निराधार है, निरालम्ब है, निराश्रय है, अविभक्त है, अखण्ड है, निष्कल है, निरंशक है, एकरूप है, सदा शान्त है, निर्भेद है, सुस्थिर है, सम है, धूमरहित अग्निके समान है, सर्वतेजोमय परम देव है, भा-रूप है, पूर्ण चैतन्य है, स्वप्रकाश है, चिदात्मक है, आनन्द है, परमानन्द है, पूर्णानन्द है, महाशिव है, भूमानन्द, सदानन्द, परानन्द, परात्पर है। ऐसे ध्यानसे सत्य-परावर ब्रह्मका साक्षात्कार होते ही सब कर्म छूट जाते हैं और समस्त बन्धन टूट जाते हैं।

(२१) सुख-दुःखमें जिसके मुखकी प्रभा नित्य एक-सी रहती है, जो आत्मामें तृप्त है, आत्मामें ही सन्तुष्ट है, आत्मामें ही क्रीडा करता है, आत्मामें ही रति करता है, निन्दा सुनकर जिसके मनमें क्षोभ नहीं आता और प्रशंसा सुनकर जो हर्षित नहीं होता, वही भक्त है, वही जीवन्मुक्त है, वही महात्मा है, वही सेवनीय और पूजनीय है।

(२२) जो जाग्रत्-अवस्थामें सुप्तके समान बर्तता है, सब दोषोंसे निर्मुक्त है, मरनेकी जिसको चिन्ता नहीं, जीनेकी इच्छा नहीं, जो जगत्में जड नहीं देखता किंतु सर्व चिन्मय देखता है, सदा ही जिसको ब्रह्मभाव है, वह भक्त जीवन्मुक्त वसुधाको पवित्र करनेवाला है। ब्रह्मादि देवता भी उसको नमस्कार करते हैं।

(२३) जो सब तजता है, हरि भजता है, वह बिना इच्छा किये हुए भी मुक्त ही है, इसमें संशय नहीं है।

मानव जीवनकी धन्यता

(पूज्य स्वामी श्रीपथिकजी महाराज)

ए मन तुम गाओ गान यही, हरिः शरणम् हरिः शरणम्।
दिखता है भाव महान यही, हरिः शरणम् हरिः शरणम्॥
चाहे कितना दुःख सुख होवे, तू कर्मों से ना विमुख होवे।
निकले अन्तर से तान यही, हरिः शरणम् हरिः शरणम्॥
रहना हो घर में या वन में, चिन्ता न रहे कोई मन में।
है सहज सुलभ सद् ज्ञान यही, हरिः शरणम् हरिः शरणम्॥
सुख साम्राज्य पाये तो क्या, या सर्वस खो जाये तो क्या।
भक्तों को तो अभिमान यही, हरिः शरणम् हरिः शरणम्॥
फल ये ही मानव जीवन का, सम्बन्ध छोड़ धन वैभव का।
पा जाये परम स्थान यहीं, हरिः शरणम् हरिः शरणम्॥
मिलती इससे सच्ची सद्गति है, यह कितनी सुन्दर सम्मति है।
बस रहे 'पथिक' का ध्यान यही, हरिः शरणम् हरिः शरणम्॥

भजनकी आवश्यकता

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

जो सबसे बढ़कर प्रियतम हो, जो प्राणोंका आधार हो, जो जीवनका एकमात्र अवलम्बन हो, जिसकी स्मृति और मिलनकी आशा ही जीवनमें प्रतिपल चेतना प्रदान करती हो, उसे क्षणभरके लिये भी कैसे भुलाया जा सकता है? कोई कहे कि दिन-रातमें दो घण्टे भले ही उसे स्मरण कर लिया करो, शेष बाईस घण्टे घरके दूसरे आवश्यक कामोंमें खर्च किया करो, तो ऐसा करना उस प्रेमीके लिये कैसे सम्भव हो सकता है? उसे कितने ही घण्टे कुछ भी काम क्यों न करना पड़े, वह करेगा अपने प्रियतमका स्मरण करते हुए ही। उसे वह क्षणभरके लिये भी अपने हृदय-मन्दिरसे अलग नहीं कर सकता। हृदयमें उसकी झाँकी सदा खुली रहेगी, वह उसके दर्शन करता हुआ ही यन्त्रकी भाँति शरीरसे कार्य करता रहेगा। ऐसे अनन्यचेता सतत और नित्य चिन्तनमें लगे रहनेवाले प्रेमीको भगवान् नित्य प्राप्त ही रहते हैं, वे उसकी अन्तर्दृष्टिसे कभी ओझल हो ही नहीं सकते। इसी स्थितिको प्राप्त भक्त सूरदासने कहा था—

हाथ छुड़ाये जात हौ निबल जानिकै मोहिं।
हिरदै तें जब जाहुगे सबल बदौंगो तोहिं॥

इसी तन्मयतामें लीन गोपियाँ प्रतिक्षण प्रत्येक कार्य करते समय प्रियतम श्यामसुन्दरके गुणगान करती हुई आँसू बहाया करती थीं। भाग्यशालिनी व्रजांगनाओंकी बड़ाई करते हुए भागवतकार भगवान् व्यास कहते हैं—

या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप-
प्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितो क्षणमार्जनादौ।
गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो
धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः॥

उन श्रीकृष्णमें चित्तको अनुरक्त रखनेवाली व्रजवनिताओंको धन्य है, जो गौ दुहते, दधि-मंथन करते, घर लीपते, झूला झूलते, रोते हुए बालकोंको लोरी सुनाते, झाड़ देते, चौका लगाते तथा विश्राम करते—सब समय सर्वदा पवित्र-कीर्ति भगवान् श्रीकृष्णको अपने सामने देखकर नेत्रोंसे प्रेमके आँसू बहाती हुई गद्‌गद स्वरसे उनका गुण गाया करती हैं।

भगवान्‌को याद रखनेका उपदेश, घण्टे-दो-घण्टे या अधिक नियमित कालके लिये नाम-जपकी आज्ञा, इतनी संख्या पूरी करनेपर सिद्धि हो जायगी, इस लोभसे संख्यायुक्त जप या संख्याकी गणनासे जप हो जाता है, यों भूल रह जाना सम्भव है, इसलिये संख्याकी अवधि बाँधकर जप करना चाहिये—यह आदेश तो उन आरम्भिक साधकोंके लिये है, जो भगवान्‌के प्रेमी नहीं हैं; न करनेकी अपेक्षा ऐसा करना बहुत उत्तम है। प्रेम प्राप्त होनेपर यह कहना नहीं पड़ता कि अमुक समयतक अमुक संख्यासे उन्हें याद किया करो। संख्या या समयका हिसाब कौन रखे? जब एक क्षणभरके लिये स्मृति चित्तसे नहीं हटती, तब हिसाब-किताबकी बात ही कहाँ रह जाती है? श्रीरामचरितमानसमें भगवान् श्रीरामको सीताका सन्देश सुनाते हुए श्रीहनुमान्‌जी कहते हैं कि 'प्रभो! सीता प्राण-त्याग करना चाहती हैं, परंतु प्राण निकल नहीं पाते' सीताजीने कहा है—

नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट।
×××× जाहिं प्रान केहिं बाट॥

प्राण कैद हो गये। आठों पहर आपके ध्यानके किंवाड़ लगे रहते हैं। आपका ध्यान कभी छूटता नहीं, आपकी श्याम-तमाल माधुरी-मूर्ति कभी मनके नेत्रोंसे परे होती ही नहीं। यदि कभी किंवाड़ खोले भी जायँ तो बाहर रात-दिन पहरा लगता है। पहरेदार कौन है? रामनाम, क्षणभरके लिये राम-नाम लेनेसे जिह्वा विराम नहीं लेती। प्राण कैसे निकलें? ऐसी स्थितिमें क्या सीताको इस उपदेशकी अपेक्षा थी कि तुम अशोकवाटिकामें अकेली रहती हो, समय बहुत मिलता है, इसके सिवा राक्षसियोंका डर रहता है, इसलिये कुछ देर रामको याद

कर लिया करो। यह उपदेश या तो अभक्तोंके लिये है या प्रेमहीन रँगरूटोंके लिये।

प्रेमीजनोंको तो अपने प्रेमास्पदका नाम इतना प्यारा होता है कि स्वयं तो वे उसे कभी भूल ही नहीं सकते; दूसरेको कभी भूले-भटके उच्चारण करते सुन लेते हैं, तो उसकी चरण-धूलि लेने दौड़ते हैं। प्रियतमका नाम लेनेवाला, प्रियतमका गुण गानेवाला, प्रियतमका प्रेमी, हृदयसे आदरका पात्र, प्रेमका पात्र न हो तो कौन होगा? प्रियतमका चिह्न ही हृदयमें हर्ष पैदा कर देता है। गोपियाँ श्याम मेघोंको देखकर श्रीकृष्णका स्मरण करती हुई मेघोंका दीर्घजीवन मनाती हैं।[1] भरतजी श्रीरामके पदचिह्न और कुशशय्याके तृणोंको देखकर वहाँकी धूलिको और तृणोंको सिर-माथेपर चढ़ाने लगते हैं,[2] श्रीराम सीताके वस्त्रको हृदयसे लगाते हैं,[3] महामुनि वसिष्ठ[4] और भरतजी[5] गुहको अपने रामका प्रिय सखा समझकर उसपर रामके सदृश स्नेह और प्रेम दिखलाते हैं। सीता-सन्देश सुनानेवाले हनुमान्‌के प्रति श्रीराम और श्रीरामका आगमनसंवाद सुनानेवाले हनुमान्‌के प्रति श्रीभरत ऐसी कृतज्ञता प्रकट करते हैं कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता। दोनों ही अपनेको हनुमान्‌का चिरऋणी घोषित करते हैं—

श्रीरामके वचन—

सुनु कपि तोहि समान उपकारी।
नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी॥
प्रति उपकार करौं का तोरा।
सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं।
देखेउँ करि बिचार मन माहीं॥

श्रीभरतके वचन—

नाहिन तात उरिन मैं तोही।
अब प्रभु चरित सुनावहु मोही॥
एहि संदेस सरिस जग माहीं।
करि बिचार देखेउँ कछु नाहीं॥

भगवान् श्रीकृष्णका सन्देश लेकर जब उद्धवजी व्रजको पधारे, तब श्रीकृष्णके-से वेषमें देखकर गोपियोंने उन्हें घेर लिया और यह जानकर कि यह भगवान् श्रीकृष्णका सन्देश लेकर आये हैं, गोपियोंके हर्षका पार न रहा—

तं प्रश्रयेणावनताः सुसत्कृतं
सव्रीडहासेक्षणसूनृतादिभिः।
रहस्यपृच्छन्नुपविष्टमासने
विज्ञाय सन्देशहरं रमापतेः॥

और उन्होंने विनयावनत होकर प्रेमभरी लज्जापूर्ण दृष्टिसे और मधुर वचनोंसे उनका सत्कार किया।

जबतक भगवान् हमारे परम प्रेमास्पद नहीं हैं, तभीतक उनके स्मरण-चिन्तनका अभ्यास करना है, जिस शुभ घड़ीमें हम अपने-आपको उनके चरणोंपर न्योछावर कर देंगे, मन उनके मनमें मिला देंगे, फिर तो हर घड़ी हमें उन्हींकी प्राणाधिक प्रिय छबि दिखलायी देगी; फिर गोपियोंकी भाँति कविवर 'देव' की भाषामें हम भी यह कह सकेंगे—

जौ न जीमें प्रेम तो कीजै व्रत नेम, जब
कंजमुख भूलै तब संजम बिसेखिये।
आस नहीं पीकी, तब आसन ही बाँधियत,
सासनकै साँसन को मूँदि पति पेखिये॥
नखतें सिखालों सब श्याममयी बाम भईं
बाहर औ भीतर न दूजो देव लेखिये।

---

१. श्यामघन जीवत रहौ सदाय। तुम्ह देखत घनश्याम हमारे मनमन्दिर प्रगटाय॥
२. कुस साँथरी निहारि सुहाई। कीन्ह प्रनामु प्रदच्छिन जाई॥
चरन रेख रज आँखिन्ह लाई। बनइ न कहत प्रीति अधिकाई॥
३. पट उर लाइ सोच अति कीन्हा।
४. रामसखा रिषि बरबस भेंटा। जनु महि लुठत सनेह समेटा॥
एहि सम निपट नीच कोउ नाहीं। बड़ बसिष्ठ सम को जग माहीं॥
५. भेंटत भरतु ताहि अति प्रीती। लोग सिहाहिं प्रेम कै रीती॥

योग करि मिलैं जो वियोग होइ व्रजपतिकौ,
जो न हरि होय, तौ ध्यान धरि देखिये॥

योग कहते हैं अप्राप्तकी प्राप्तिको, प्राप्तिके अभावको कहते हैं वियोग। यहाँ प्राणप्यारे नन्द-नन्दनका नित्य संयोग है, फिर योग किसलिये साधें? वियोग ही नहीं, तब योग कैसा?

परंतु यह शुभ स्थिति हरएकको नसीब नहीं होती। भगवान्‌के प्रेमको प्राप्त करना सहज बात नहीं। प्रेम मुँहकी चीज नहीं; प्रेमकी बातें बनानेवाले बहुत मिल सकते हैं, पर प्रेमके पथपर कोई धीर ही चल सकता है। जबतक जगत्‌के भोगोंमें आसक्ति है, शरीरके आरामकी चिन्ता है, यश-कीर्तिका मोह है, तबतक प्रेमके पन्थकी ओर निहारना भी मना है। प्रेमके मार्गपर वही वीर चल सकता है, जिसने वैराग्यके दावानलमें विषयासक्तिको सदाके लिये जला डाला हो। प्रेमिका मीरा कहती है—

चुनरीके किये टूक ओढ़ लई लोई।
मोती मूँगे उतार बनमाला पोई॥

प्रेमके पथपर वही पग रख सकता है जो प्रेममार्गके काँटोंको फूलोंकी शय्या, प्रेमास्पदके किये हुए तिरस्कारको पुरस्कार, महान् विपत्तिको सुख-सम्पत्ति, अपमानको सम्मान और अयशको यश समझता है। उसका पथ ही उलटा होता है, वह कोई ऐसा घृणित कार्य नहीं करता, जिससे उसका अपमान, तिरस्कार हो या विपत्ति आये तथापि वह अपमान, तिरस्कार और विपत्तिको प्रेमास्पदके मिलनका मार्ग समझकर उनका स्वागत करता है, उनसे चिपट रहता है। प्रेमपन्थियोंको प्रेमियोंके निम्नलिखित शब्द याद रखने चाहिये—

नारायण घाटी कठिन जहाँ प्रेमको धाम।
विकल मूर्छा सिसकिबो, ये मगके विश्राम॥
सीस काटिकै भुइँ धरै, ऊपर राखे पाव।
इश्कचमनके बीचमें, ऐसा हो तो आव॥
सिर काटौ छेदौ हिया टूक-टूक करि देहु।
पै याके बदले बिहँसि वाह वाहकी लेहु॥
पीया चाहै प्रेमरस राखा चाहै मान।
एक म्यानमें दो खडग देखी सुनी न कान॥
प्रेमपन्थ अति ही कठिन सबपै निबहत नाहिं।
चढ़के मोम-तुरङ्ग पै चलिबो पावक माहिं॥
नारायण प्रीतम निकट सोई पहुँचनहार।
गेंद बनावे सीसकी खेलै बीच बजार॥
ब्रह्मादिकके भोग सब विषसम लागत ताहि।
नारायण ब्रजचन्दकी लगन लगी है जाहि॥

ऐसे प्रेमी भक्त सीस उतारकर मरते नहीं। सीस उतारे फिरते हैं, परंतु प्यारेके लिये जीवन रखते हैं। मर जाय तो प्यारेको दुःख हो। इसलिये जीते हुए ही मर जाते हैं अथवा मरकर भी जीते हैं। जिनकी ऐसी स्थिति हो गयी है, उनको धन्य है, उनके पिता-माताको धन्य है, उनके देशको धन्य है। उन्हींका जन्म सफल होता है। ऐसा करनेपर जब उन्हें प्रियतम मिल जाता है, जब प्रियतमके साथ घुल-मिलकर वे अपने आपको खो देते हैं, तब तो वे प्रियतमका स्वरूप ही बन जाते हैं—

'तू तू करते तू भयो मुझमें रही न हूँ'

× × × ×

जब 'मैं' था तब 'हरि' नहीं, अब 'हरि' है 'मैं' नाहिं।
प्रेमगली अति साँकरी, तामें दो न समाहिं॥

इसी स्थितिको प्राप्त करना मनुष्य-जीवनका ध्येय है। इसीके लिये भगवान्‌ने गीतामें आज्ञा दी है—

अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्॥

इस सुखरहित और अनित्य मनुष्य-शरीरको पाकर तू निरन्तर मेरा भजन कर। भजनसे ही उपर्युक्त स्थिति प्राप्त हो सकती है। जबतक प्रेम न हो, तबतक श्रद्धाके साथ कुछ नियम बनाकर ही भगवान्‌का भजन अवश्य करना चाहिये। भजन करते-करते ज्यों-ज्यों अन्तःकरणका मल नष्ट होगा, त्यों-ही-त्यों अन्तःकरण शुद्ध होगा और भगवान्‌के प्रति प्रेम बढ़ता रहेगा, परंतु यह 'अटल सिद्धान्त' सदा स्मरण रखना चाहिये कि—

बारि मथें घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल।
बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धांत अपेल॥

'.....ताहि बोउ तू फूल!'

(पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

एक संतका पद है—

'जो तोकूँ काँटा बुवै ताहि बोउ तू फूल!'

बात बहुत छोटी-सी है, पर है बड़ी कठिन। कहा है किसीने—

'मधु पी लेते सभी मधुप बन,
पर विषपान कठिन कितना है।'

सचमुच, बहुत कठिन है नीलकण्ठ बनना।

पर कठिन लाख हो, हम कोशिश करके नीलकण्ठ बन सकते हैं, जरूर बन सकते हैं।

लीजिये कुछ उदाहरण।

मारनेसे पहले मुझसे काम तो ले लो

'आखिर तुम चाहते क्या हो?'

'मुझे मारना है? यह काम तो तुम कभी भी आकर कर सकते हो। पर मुझे मारनेसे पहले मेरे लायक कोई काम हो तो वह मुझसे करा लो; फिर चाहे जब मार डालना। मैं तो रोज सबेरे इसी बगीचेमें मिलता हूँ।'— सिरेमल बापनाने कहा।

इतना सुनना था कि नाथूसिंहके हाथका रिवाल्वर छूटकर धरतीपर जा गिरा।

वह फुक्का फाड़-फाड़कर रोने लगा। उसने पैर पकड़ लिये बापना साहबके।

× × ×

सिरेमल बापनाने अपने जीवनके बयासी वर्षोंमेंसे इकतालीस वर्ष होल्कर, पटियाला, बीकानेर, रतलाम एवं अलवर-जैसी देशी रियासतोंमें प्रधानमन्त्री या गृह मन्त्री-जैसे ऊँचे पदोंपर रहकर बिताये थे।

इन दिनों वे इन्दौरमें थे।

वहींके खडैल गाँवका पटेल था—नाथूसिंह।

भाइयोंसे उसका झगड़ा हुआ। पुलिसने उसे कई फौजदारी मुकदमोंमें फँसा दिया। एकसे छूट न पाता, दूसरेमें पकड़ जाता।

× × ×

अन्तमें निराश होकर नाथूसिंहने सोचा कि पुलिसके चंगुलसे छुटकारा मिलना मुश्किल है तो चलूँ, सारी खुराफातकी जड़ रियासतके दीवानका ही खातमा कर दूँ—'न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी!'

× × ×

दीवान बापना साहब रोज सबेरे एक घण्टे अपने बगीचेमें जनताकी फरियादें सुनते। उनसे जो बनता, करते।

एक दिन नाथूसिंह सब फरियादियोंके पीछे जा खड़ा हुआ। सबके चले जानेपर जब उसकी बारी आयी, तब वह रिवाल्वर तानकर बापना साहबकी ओर बढ़ा।

बापना साहब न डरे, न घबराये, न झिझके।

उन्होंने बड़े प्रेमसे पूछा—'आखिर तुम चाहते क्या हो? तुम मुझे मारना चाहते हो तो चाहे जब मार डालना। मैं रोज यहाँ मिलता हूँ। पर मुझे मारनेसे पहले, मुझसे जो हो सकता है, वह काम तो मुझसे ले लो!'

× × ×

नाथूसिंहका तना हुआ रिवाल्वर हाथसे छूट गया। रोते-रोते उसने बापना साहबके चरण पकड़ लिये।

बापना साहबने उसे उठाकर गलेसे लगा लिया। अपना रूमाल निकालकर उसके आँसू पोंछे, उसका मुँह पोंछा। फिर कहा—'तुम्हें जो तकलीफ हो, मुझे सुनाओ।'

नाथूसिंहने अपनी मुसीबतकी सारी कहानी कह सुनायी। उसने बताया कि पुलिस किस तरह झूठे मुकदमे चलाकर उसे सता रही है।

फिर वह बोला—'मैं अब ऊब उठा हूँ इस जीवनसे।'

बापना साहबने उसे ढाढस बँधाया और कहा— 'तुम सारी बातें लिखकर मुझे दे दो।'

दूसरे दिन नाथूसिंहने सारी कहानी लिखकर उन्हें दे दी। उन्होंने सारी फाइलें तुरंत मँगवाकर सारे मामलोंका निपटारा करा दिया।

नाथूसिंहकी मुसीबतोंके सारे बादल छँट गये।

कसूर मेरा है, भाभीका नहीं

कोई बीस साल पहलेकी घटना है हरियाणाके एक नगरकी।

एक सम्पन्न परिवारमें चोरी हो गयी।

कोई दो हजारका गहना चोरी चला गया।

घरकी मालकिनने अफवाह उड़ा दी कि यह चोरी उसके देवरकी करतूत है।

उसके पतिने उसे लाख समझाया, पर वह नहीं मानी।

देवरसे उसकी पटती नहीं थी। चोरीके बहाने वह उसे घरसे निकलवा देना चाहती थी।

पर ऐसा हो नहीं सका।

बड़ा भाई मानता था कि उसके भाईका कोई कसूर नहीं है।

बादमें पुलिसने असली चोरोंको पकड़ लिया और माल भी बरामद कर लिया।

पर भाभीका देवरके प्रति रुख न बदला सो न बदला।

× × ×

एक दिन देवर खाना खाते ही बेहोश हो गया।

बड़ा भाई उसे अस्पताल ले गया।

जहरके लक्षण देखकर उसे उलटी आदि करायी गयी।

तत्काल उपचार होनेसे उसकी जान बच गयी।

पर अस्पतालवालोंने पुलिसमें रिपोर्ट कर दी।

उधर घरके नौकरने मालिकको बता दिया कि 'मैं ही मालिकनके कहनेपर जहर लाया था।'

पुलिसकी जाँच आनेपर मालिकने कह दिया कि 'मुझे इस घटनामें अपनी पत्नीका हाथ लगा दीखता है।'

पुलिसने उसकी पत्नीको गिरफ्तार कर लिया।

× × ×

मुकदमा चला तो छोटे भाईने हलफिया बयान दिया, उससे मुकदमेका रुख ही बदल गया। उसने कहा—'मैं परीक्षामें फेल हो गया था, इससे आत्महत्या करना चाहता था। मैंने ही कुछ इनाम देकर नौकरसे जहर मँगवाकर भोजनमें मिला लिया था। भाभीने एक दिन गुस्सेमें नौकरको डाँट दिया, इसीसे उसने जहर देनेमें भाभीका नाम ले लिया है। दर-असल कसूर मेरा है, भाभीका नहीं।'

अदालतने भाभीको बरी कर दिया। देवरको छः महीनेकी कैदकी सजा दे दी।

देवरके त्याग, प्रेम और बलिदानने भाभीका हृदय पलट दिया। वह रो पड़ी—फफक्-फफक्कर।

देवरके जेलसे छूटकर आनेपर भाभीका व्यवहार पहलेसे एकदम बदल गया। वह जी-जानसे देवरपर अपना स्नेह उडेलने लगी।

उत ते वे फल देत

'यह लो एबर्ट!'—कहते हुए एक लड़केने ब्लैकबोर्डका पोतना स्याही और खड़ियामें भिगोकर मास्टर एबर्टके मुँहपर फेंक मारा।

पोतना एबर्टके कन्धेपर लगा। उनके चेहरेपर, उनकी सफेद कमीजपर स्याहीके धब्बे पड़ गये।

एबर्टने जेबसे रूमाल निकालकर अपना मुँह पोंछ डाला। उन्होंने सिर्फ इतना ही कहा—'बच्चे, एक शैतानी हो गयी, अब बस!'

फिर उन्होंने धीरेसे कहा—'कमीज खराब हो गयी!'

इतना कहकर वे लड़कोंकी कापियाँ जाँचने लगे। बच्चोंको सुलेख—खुशखती सिखाना उनका काम था।

× × ×

यह घटना है सन् सत्तावनकी। १९५७ की नहीं, १८५७ की।

उन दिनों रूसमें एक फौजी स्कूल था। बड़े-बड़े रईसों और जमीदारोंके लड़के उसमें पढ़ते थे। पास होनेपर ये ही लड़के रूसके सम्राट् जारके पार्षद बनते थे और सरकारी फौजके ऊँचे ओहदे सँभालते थे।

प्रसिद्ध क्रान्तिकारी प्रिंस क्रोपाटकिन भी उन दिनों इसी स्कूलमें पढ़ते थे। बड़ी कोशिश-पैरवीके बाद उन्हें यहाँके पाँचवें दर्जेमें प्रवेश मिला था।

एबर्ट—सीधा-सादा एबर्ट, गरीबीका मारा एक अध्यापक था। बेचारेको किसी तरह यहाँ नौकरी मिल गयी थी।

दूसरे अध्यापकोंका तो लड़के कुछ सम्मान भी करते थे, पर एबर्टके साथ वे अच्छा व्यवहार भी नहीं करते।

दो-दो, तीन-तीन सालके फेलशुदा लड़कोंकी शरारतका तो पार ही न रहता। वे लोग एबर्टको बहुत सताते।

एबर्टने परिस्थितिसे मानो समझौता कर लिया था—'एक दिनमें एक शैतानी!'

पर ढीठ लड़कोंको भला इतनेसे भी कहाँ संतोष!

× × ×

उस दिन जब एबर्टको पोतना खींचकर मारा गया तो शैतानीकी हद हो गयी। लड़के सोचने लगे कि आज तो एबर्ट निश्चय ही प्रिंसिपलके पास जाकर शिकायत करेंगे।

पर एबर्टने ऐसा कुछ नहीं किया।

यह देखकर लड़के सब सन्न रह गये।

सबको इस खोटी करनीपर शर्म आयी।

क्रोध और घृणापर प्रेमका मलहम लगाते देख कक्षाके सभी विद्यार्थी एबर्ट के पक्षमें हो गये।

शरारती लड़केसे सबने कहा—'तुमने बड़ी धृष्टता की है।'

एक लड़केने जोरसे चिल्लाकर कहा—'मास्टरजी गरीब हैं। तुमने उनकी कमीज खराब कर दी। तुम्हें शर्म आनी चाहिये।'

शरारती लड़का तुरंत उठा। उसने एबर्टके पास जाकर उनसे माफी माँगी।

उन्होंने धीरेसे कहा—'आपको सीखना चाहिये।'

× × ×

दूसरे दिनसे सब विद्यार्थी शान्त हो गये।

एबर्टके व्यवहारने, उनकी उदारता और क्षमाने जादूका काम कर दिया।

सबमें मानो होड़-सी लग गयी कि हम अपने खुश-खतसे मास्टरजीको खुश करेंगे।

क्रोपाटकिन अपने संस्मरणोंमें लिखते हैं कि 'एबर्ट गुरुकी क्षमा और प्रेमका यह उदाहरण मुझे कभी नहीं भूला।'

'इत ते वे पाहन हनें, उत ते वे फल देत!'

× × ×

प्यार करनेवालेसे प्रेम करना आसान है।

भलाई करनेवालेके साथ भलाई करना आसान है।

पर वैर-विरोध करनेवालेके साथ प्रेम करना, बुराई करनेवालेके साथ भलाई करना कठिन है। उसीमें कसौटी है—हमारी इंसानियतकी, हमारी मनुष्यताकी।

धन्य है वह मानव, जो वैरका बदला प्रेमसे और बुराईका बदला भलाईसे देता है; काँटोंके बदलेमें फूल बिखेरता है और विषके बदलेमें अमृत ढुलकाता है।

काश, हम इस कसौटीपर खरे उतर सकें!

रहिमन प्रीति न कीजिए, जस खीरा ने कीन।
ऊपर से तो दिल मिला, भीतर फाँके तीन॥
रहिमन प्रीति सराहिए, मिले होत रँग दून।
ज्यों जरदी हरदी तजै, तजै सफेदी चून॥

[रहीम]

साधकोंके प्रति—

[गतिशील संसार]

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत॥

(गीता २।१८)

श्रीमद्भगवद्गीता मनुष्यमात्रके अनुभवकी बात कहती है कि प्रत्येक वस्तु और व्यक्ति प्रतिक्षण विनाशकी ओर जा रहे हैं। यदि मनुष्य इस ओर ध्यान दे तो महान् लाभ हो सकता है। शिशुके जन्म लेनेके बादसे लोगोंकी यही दृष्टि रहती है कि यह बड़ा हो रहा है, परंतु गम्भीरतापूर्वक विचार करें तो स्पष्टतः वह प्रतिक्षण छोटा ही होता जा रहा है। मान लीजिये कि किसीकी आयु सौ वर्षकी ही है और अबतक वह एक वर्षका हो चुका तो वास्तवमें अब वह निन्यानबे वर्षका ही है। आज किसी व्यक्तिका देहावसान हो जाता है तो हम कहते हैं कि अमुक व्यक्ति आज मर गया, पर वास्तवमें तो वह प्रतिक्षण मर रहा था, मरते-मरते आज उसका मरना पूरा हो गया—उसके देहका अवसान हो गया।

अभी हम सब लोग यहाँ सत्संगमें आये हुए हैं। जबसे हमलोग अपने स्थानसे चले हैं, तबसे अबतक जो समय बीत गया, उतने कालतक हम सब मर चुके और अभी भी मर रहे हैं, प्रतिक्षण आयु घट रही है। इस प्रकार एक दिन हमारा यह बोलना न बोलनेमें, सुनना न सुननेमें, रहना न रहनेमें एवं जीवित रहना मरनेमें अवश्य बदल जायगा। इसे कोई बड़ा-से-बड़ा वैज्ञानिक भी नहीं रोक सकता। हमलोगोंकी आजतककी अवस्थाएँ—बालकपन, जवानी एवं स्वास्थ्य आदि जो चली गयीं, क्या वे हमें अब वापस मिलेंगी? कदापि नहीं। इसी प्रकार प्रत्येक वस्तु प्रतिक्षण विनाशकी ओर जा रही है। कोई भी ऐसी वस्तु दिखायी नहीं देती, जो स्थिर हो। संत कबीरजीके शब्द हैं—

का माँगूँ कछु थिर न रहाई। देखत नैण चल्यौ जग जाई॥

यह जो कुछ दीखता है, जितना दीखता है, सब प्रतिक्षण बह रहा है—नष्ट हो रहा है। इस जगत्में केवल 'जाना' मात्र ही सत्य है, अन्य कुछ नहीं। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी कहते हैं—

देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माहीं। मोह मूल परमारथु नाहीं॥

(रा०च०मा० २।९२।८)

जो संसार प्रतिक्षण नष्ट हो रहा है, उसकी आशा रखना मूर्खता नहीं तो और क्या है? फिर भी हम नयी-नयी आशाएँ रखते हैं। क्या आशा रखनेसे इच्छित वस्तुएँ एवं परिस्थितियाँ प्राप्त हो जायँगी? और यदि प्राप्त हो भी गयीं तो क्या स्थिर रह सकेंगी? यह असम्भव है; क्योंकि स्थिर रहनेका तो उनका स्वभाव ही नहीं है। थोड़ा विचार करें, यदि हमारी वर्तमान परिस्थिति नहीं बदलेगी तो नयी कैसे मिल सकेगी? नयी मिलनेका अर्थ ही है—वर्तमान परिस्थितिका विनाश होना। अतः जिस प्रकार यह नष्ट हो गयी, उसी प्रकार नयी परिस्थितिका भी विनाश अनिवार्य है। इसलिये जो मनुष्य सांसारिक पदार्थोंकी उत्पत्ति, स्थिरता अथवा प्राप्तिकी आशा लगाये रहते हैं, उन लोगोंके लिये भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं—

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः॥

(गीता ९।१२)

'उनकी आशा, उनके कर्म एवं उनका ज्ञान—सब निष्फल है।'

प्रतिक्षण नष्ट होनेवाली वस्तुओंकी आशा कैसी? संसारकी आशा ही परम दुःख और इससे निराश हो जाना ही परम सुख है—

आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्।

(श्रीमद्भा० ११।८।४४)

जो संसार देखते-देखते ही नष्ट हो रहा है, उसकी ओरसे दृष्टि हटाकर जो रह रहा है और नित्य है, उस परमात्मतत्त्वकी ओर देखना ही यथार्थ दृष्टि है। विचार करना चाहिये, जो प्रतिक्षण नष्ट हो रहा है, वह टिकेगा कैसे? ये शरीर, परिस्थिति, मान-बड़ाई, आदर-सत्कार

आदि क्या सदा रह सकेंगे? मनुष्य इनके रहनेकी ही नहीं, अधिकाधिक मिलनेकी भी आशा लगाये रहता है, परंतु जो एक क्षण भी स्थिर नहीं रहतीं, वे क्या मिलेंगी और क्या स्थिर रहेंगी? यदि मनुष्य इस सत्यकी ओर ध्यान दे तो सचमुच कृतकृत्य हो जाय। बस, एक बार इसे ठीक-ठीक समझ लिया जाय तो यह स्वत: ही सब समय दिखायी देने लगेगा—स्मृति-पटलपर निरन्तर अंकित रहेगा।

सूर्य उदय होता है तो उसका अस्त होना भी निश्चित है, इसमें किसीको किंचिन्मात्र भी सन्देह नहीं है; किंतु सूर्यास्त होनेपर क्या हमें दु:ख होता है? यद्यपि अँधेरा होनेपर हमारे दैनिक कार्योंमें बाधा आती है तथापि हमें दु:ख या जलन नहीं होती। इसमें मूल कारण हमारी यह धारणा ही तो है कि जब सूर्य उदय हुआ है तो वह अस्त भी अवश्य ही होगा। ठीक, इसी प्रकार संसारकी वस्तुएँ अविराम अस्तकी ओर जा रही हैं, यदि हम इस सत्यको स्वीकार कर लें—सचाईसे मान लें तो फिर प्रिय-से-प्रिय वस्तुके वियोगमें भी हमें दु:ख नहीं होगा।

भगवान् श्रीकृष्ण भी अर्जुनको इसी अनित्यताके विषयमें समझाते हुए कहते हैं—

आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥

(गीता ५। २२)

'ये सभी पदार्थ आदि-अन्तवाले हैं, अनित्य हैं, अनवरत विनाशकी ओर तेजीसे गतिशील हैं, इनमें बुद्धिमान्—विवेकी पुरुष नहीं रमता।'

दिन दिन छाँड्या जात है तासों किसा सनेह।

जो क्षणमात्र भी ठहरते नहीं, उनसे प्रेम कैसे करें? इनके जानेमें कुछ भी समय नहीं लगता, तब इनसे प्रीति कैसे निभेगी? ये कुछ देर ठहरें, तब तो प्रीति हो!

हम आशा रखते हैं इस संसारकी, जो वस्तुत: है ही नहीं और निराश रहते हैं उन परमात्मासे, जो नित्य और अविनाशी हैं—यही महान् भूल है। थोड़ा विचार करें—संसारकी आशासे क्या मिलेगा? इससे आयु तो व्यर्थ नष्ट हो जायगी और मिलेगा केवल धोखा, परंतु दूसरी ओर यदि परमात्माकी आशा करें तो अवश्य ही परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति होगी; क्योंकि वे नित्य और अविनाशी हैं। संसारकी प्राप्ति कठिन ही नहीं, नितान्त असम्भव है। भला, कहीं मृग-मरीचिकासे जलकी प्राप्ति सम्भव है? जो एक क्षण भी स्थिर नहीं, उसकी प्राप्ति कैसी? अत: आशा केवल परमात्माकी ही रखनी चाहिये। यदि स्थिरचित्त होकर विचार करें तो वे परमात्मा सबको सब समय, स्वत: ही प्राप्त हैं। हमने अप्राप्त संसारको प्राप्त मान लिया है, इसलिये हमें नित्य-प्राप्त परमात्मामें अप्राप्तिका भ्रम हो गया है। यह अटल सिद्धान्त है, ठीक ज्यों-का-त्यों इसे देखना है, इसके लिये कोई नया ज्ञान अथवा अनुसंधान नहीं करना है। इसमें क्या बाधा है? थोड़ी गम्भीरतासे विचार करें तो पता लग जायगा कि यह कितनी सरल बात है।

इसे एक दृष्टान्तद्वारा समझिये—गंगातटसे थोड़ी ही दूर मार्गकी एक प्याऊपर एक परोपकारी व्यक्ति यात्रियोंको जल पिला रहा है। लोग चलते-चलते रुककर जल पीते हैं, तदनन्तर फिर चलने लगते हैं। वह व्यक्ति प्रत्येकको जल पिलाता है, उसका किसीके साथ न पहलेसे सम्बन्ध है और न जल पिलानेके बाद ही और न वह किसीसे कुछ आशा ही रखता है, उसे तो जल पिलानेमात्रसे ही प्रयोजन है। उपर्युक्त दृष्टान्त मनुष्यमात्रके कर्तव्यका दिग्दर्शन कराता है। संसारके जीवमात्र ही यात्री हैं और हम लोग जल पिलानेवालेकी तरह हैं। हमलोगोंके पास तन, मन, धन, विद्या, बुद्धि, पद एवं अधिकार आदि जो कुछ भी है, वह जल है, जो प्रतिक्षण बहता है, जिसका धर्म ही बहना है। हमलोगोंका तो यही कर्तव्य है कि इस जलको रात-दिन बहनेवाले संसारकी सेवामें लगा दें। इन बहती हुई वस्तुओंसे अविरत बहनेवाले संसारकी सेवा कर देना ही तो कर्मयोग है। राजस्थानी भाषामें एक कहावत है—

बाई रा फूल बाई रे ही चढ़ा देवे।

आशय यह है कि जो वस्तु जिसके निमित्त है, वह उसीको अर्पित कर दी गयी। इस प्रकार संसारकी बहती हुई वस्तुओंको बहते हुए जीवोंकी सेवामें लगा देनेसे जो

नित्य, अविनाशी तत्त्व है, वह स्वाभाविक ही बच रहेगा; क्योंकि उसका विनाश करनेमें कोई समर्थ नहीं है—

विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति॥

(गीता २।१७)

घरका हो अथवा बाहरका, बूढ़ा हो या जवान, छोटा हो या बड़ा, स्वस्थ हो या अस्वस्थ, अभी जन्मा हो या मृत्यु-शय्यापर पड़ा हो—कोई भी क्यों न हो, हमारा उद्देश्य तो केवल उसकी सेवा करना है, उससे कुछ लेना नहीं—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥

(गीता २।४७)

हमारा कर्म करनेमें ही अधिकार है, फलमें कभी नहीं।

अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते॥

(गीता ५।१२)

फलमें आसक्त हुए कि बन्धनमें पड़े। इसलिये यही बात युक्तिसंगत है कि कर्म तो करो, किंतु फलकी आशा मत करो। श्रीगोस्वामीजीने तो दूसरी आशा और भरोसेको ही जडता बताया है—

यह बिनती रघुबीर गुसाँई।
और आस-बिस्वास-भरोसो हरो जीव जड़ताई॥

(विनयपत्रिका १०३)

विचार करनेसे जडता स्पष्ट दिखायी देती है और यह नियम है कि जब वह स्पष्ट रूपसे दीखने लगती है तो टिक नहीं सकती; क्योंकि जब वह है ही असत्य तो टिकेगी कैसे?

'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।'

(गीता २।१६)

यदि आज इस बातको समझ लिया जाय कि संसारमें तो केवल जाना-ही-जाना है—**'सम्यग्गरी-त्यासरतीति संसारः'**, इसमें सत्य है तो केवल सेवा ही है तो यह धारणा सदाके लिये स्थिर हो जायगी। इसके लिये कोई नयी बात याद नहीं करनी है, कोई नया विचार नहीं करना है, केवल इस प्रत्यक्ष एवं सन्देहरहित तथ्यको स्वीकारमात्र कर लेना है।

प्रेरक-प्रसंग—

आदर्श कर्मठता

एक अमेरिकन फर्मने जापानमें अपना व्यापार आरम्भ किया और अपने कार्यालयमें काम करनेके लिये उसने जापानके ही लोगोंको नियुक्त किया। साधारणतया अमेरिकाके कार्यालयोंमें कामके पाँच ही दिन होते हैं, शनिवार और रविवारको अवकाश रहता है। अमेरिकाकी इस फर्मने जापानमें भी वही नीति-रीति चलायी। सोमवारसे शुक्रवारतक काम तथा शनिवार एवं रविवारको अवकाश। फर्मके सभी जापानी कर्मचारियोंने इसका विरोध किया। यह बात सभीको आश्चर्यमें डालनेवाली थी। विरोधका कारण समझमें न आया। अन्तमें कर्मचारियोंसे पूछा गया—'आपलोगोंको क्या कष्ट है?'

जानते हैं, इसका उत्तर क्या दिया गया? उन लोगोंने कहा—'हमें दो छुट्टियाँ नहीं चाहिये, हमारे लिये एक ही छुट्टी पर्याप्त है।' कारण क्या बताया—यह भी सुनिये। 'यहाँकी जनता मानती है कि अधिक छुट्टियोंसे हम आलसी बन जायँगे, परिश्रम करनेमें हमारा मन न लगेगा और इससे भी अधिक हानि तो यह है कि छुट्टीके दिन हमलोग और दिनोंकी अपेक्षा व्यय भी अधिक करते हैं। जो छुट्टी हमें आर्थिक बोझसे दबा दे और मानसिक दासता बढ़ा दे, वह हमारे जीवनमें नहीं खप सकती।'

कैसी स्वस्थ मनःस्थिति है। वस्तुतः ऐसी ही मनःस्थिति देश तथा उसकी प्रजाको ऊँचा उठा सकती है। श्रमका जीवनके साथ गहरा सम्बन्ध है। इस प्रजाने श्रम करके जगत्के दूसरे देशोंको बदला दिया कि कैसे टूटे-फूटे खण्डहरोंको भव्य प्रासादोंमें परिवर्तित किया जा सकता है।

काश, हमलोग भी इससे कुछ शिक्षा ले सकते! 'अखण्ड-आनन्द'—इंसा बहन, मो० पटेल

उद्धार और अधोगति

(श्रीबरजोरसिंहजी)

जीव अज्ञानवश अनादिकालसे इस दु:खमय संसार-सागरमें गोते लगाता रहा है और नाना प्रकारकी भली-बुरी योनियोंमें भटकता हुआ भाँति-भाँतिके भयानक कष्ट सहता रहता है। जीवकी इस दीन दशाको देखकर श्रीभगवान् साधनोपयोगी देवदुर्लभ मनुष्य शरीर देकर एक अवसर देते हैं, जिससे वह चाहे तो साधनाके द्वारा एक ही जन्ममें संसार-समुद्रसे निकलकर परमानन्दस्वरूप परमात्माको प्राप्त कर सकता है। श्रीभगवान्ने श्रीगीताजीमें अपने द्वारा अपना उद्धार करनेकी बात कहकर जीवको यह आश्वासन दिया है कि तुम यह न समझो कि तुम्हारा प्रारब्ध बुरा है, इसलिये तुम्हारी उन्नति होगी ही नहीं। तुम्हारा उत्थान-पतन प्रारब्धके अधीन नहीं है, तुम्हारा उत्थान तुम्हारे ही हाथमें है, साधना करो और अपना उद्धार करो। भगवान् गीता (९।३०)-में कहते हैं—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥

गीताके पढ़नेवालेका धीरे-धीरे उद्धार होने लगता है, इस बातमें जरा भी सन्देह नहीं करना चाहिये। भगवान् कहते हैं कि केवल सदाचारी और साधारण पापियोंका मेरा भजन करनेसे या मेरी राहमें चलनेसे उद्धार हो जाय तो यह विशेष बात नहीं है। दुराचारी मनुष्य विषयों और पापोंमें आसक्त रहनेके कारण मेरा भजन नहीं करते, पर जब दुराचारीके पूर्वजन्मके शुभ संस्कारोंकी जागृति हो जाती है—शास्त्रोंके अध्ययन या महात्मा पुरुषोंके सत्संगसे दुराचारी मनुष्यकी मुझमें श्रद्धा-भक्ति हो जाती है, वह मेरा भजन, ध्यान और मेरे बताये रास्तेपर चलने लगता है तो उसका उद्धार हो जाता है। श्रीभगवान् सदाचारी और दुराचारीको किस प्रकार मेरा भजन और मेरी सेवा-पूजा करनी चाहिये, इसकी विधि बताते हुए गीतामें कहते हैं—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥

(९।३४)

श्रीभगवान् कहते हैं कि मेरेमें ही मनवाला हो जा। सिवाय मेरे दूसरा भाव मनमें न आने पाये। मेरा अनन्य भक्त हो जा, मेरे अनवरत चिन्तनमें लग, मुझे हर समय—मृत्युकालपर्यन्त मेरा ही स्मरण किया कर, श्रद्धासहित मेरा ही निरन्तर पूजन किया कर और मुझे नमस्कार किया कर—इस प्रकार चित्तको मुझमें लगा दे, मेरी शरण होकर आत्माको मुझमें एकीभावसे स्थितकर तू मुझे ही प्राप्त होगा अर्थात् तेरा उद्धार हो जायगा।

श्रीभगवान् गीता (१०।१०)-में कहते हैं कि निरन्तर जो मेरे ध्यानमें लगे हैं, उन्हें मैं बुद्धियोग देता हूँ। तत्त्वके यथार्थ ज्ञानका नाम बुद्धि है। उस बुद्धिसे अविवेकजन्य मोहरूपी अन्धकारको मैं विवेक-बुद्धिरूप ज्ञानदीपकद्वारा नष्ट कर देता हूँ। इतना ही नहीं जो मेरी शरणमें रहते हैं, वे मेरी गुणमयी (सत्, रज और तमोमयी) मायासे तर जाते हैं। मायाका काम है, भगवान्के स्वरूपको छिपा देना और अपने स्वरूपको प्रकट करके जीवात्माके स्वरूपमें भोगबुद्धि करा देना, पर जो मुझमें चित्त लगानेवाले होते हैं, वे मेरी कृपासे सभी संकटोंसे पार उतर जाया करते हैं। यथा—

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि।
अथ चेत्त्वमहङ्कारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि॥

(गीता १८।५८)

मुझमें चित्तवाला होकर तू मेरी कृपासे मन और इन्द्रियोंपर विजय करके समस्त कठिनाइयोंको अर्थात् जन्ममरणरूप संसारके समस्त कारणोंको मेरे अनुग्रहसे तर जायगा अर्थात् पार उतर जायगा और यदि मेरे कहे हुए वचनोंको अहंकारसे कि 'मैं पण्डित हूँ या बुद्धिमान् हूँ'—ऐसा मानकर जो नहीं सुनेगा या अपनी बुद्धि लगायेगा तो उसका पतन होना निश्चित है और वह अधोगतिको प्राप्त हो जायगा।

मन और इन्द्रियोंसहित जिसने भी शरीर जीता हुआ है, वही अपना मित्र है और जिसके द्वारा मन और इन्द्रियोंसहित

शरीर नहीं जीता गया है, उसके लिये वह स्वयं शत्रु है। गीतामें बार-बार उद्धार कैसे हो, कल्याण कैसे हो और परम पिता परमात्मासे कैसे मिलें—इसकी विधि बतायी गयी है। तुम्हारी आत्मा ही अपना मित्र है। सृष्टिमें न दूसरा कोई शत्रु है न मित्र है। हम यदि सचमुच अपना उद्धार चाहते हैं तो सबसे पहले हमें विषय-भोगोंको छोड़ना ही होगा। इन्द्रियोंद्वारा भोगे जानेवाले विषयोंमें आसक्त होनेसे ही हम आत्मज्ञानसे वंचित रह जाते हैं। विषय-भोग तो केवल शरीर और मनको ही सन्तुष्ट कर सकते हैं। आत्माको कभी नहीं। भोगसे वासनाएँ कभी किसीकी तृप्त नहीं हुई हैं। वासनाएँ बार-बार उठती हैं, जो कि अनेक जन्मोंतक चलती रहती हैं। इन विषयोंके प्रति आसक्ति ही हमारे बार-बार जन्म-मृत्युका कारण बनती है। भोगोंमें आसक्ति होनेसे ही काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार आदि अनेक अवगुण आते हैं, जो जन्म-जन्मान्तरतक समाप्त नहीं होते। आसक्तिके त्यागसे ही हमारा अन्त:करण स्वच्छ एवं पवित्र हो सकता है और हम इन बुराइयोंसे मुक्त हो सकते हैं। क्षमा, सरलता, दया, सन्तोष एवं सत्यरूपी अमृतको अन्त:करणमें भरकर सेवन करनेसे ही हमें अमृतका लाभ मिलेगा और हमारा उद्धार हो जायगा और जिसने उस परमतत्त्वको नहीं जाना, जिसने आत्माका अनुभव नहीं किया, उसे परमात्मा मिल नहीं सकते, न ही वह मुक्त हो सकता है, उसकी इच्छाएँ, आकांक्षाएँ समाप्त नहीं हो सकतीं, उसमें समभाव आ नहीं सकता। ऐसा अज्ञानी अशान्त बुद्धिवाला होता है। वह सभी स्थानोंपर अशान्त रहता है और अधोगतिको प्राप्त होता है।

जय जय दशरथनन्दन! राम!!

(आचार्य श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र 'विनय')

जय जय दशरथनन्दन! राम।
जय कलिकलुषनिकन्दन राम॥ टेक॥

कौसल्यासुखवर्द्धन राम,
जय जानकीहृदयधन! राम।
द्विजगुरुदेवाराधन राम,
भुक्तिमुक्तिसृतिसाधन राम॥
सुजनमन:प्रस्यन्दन राम।
जय कलिकलुषनिकन्दन राम॥ टेक॥

त्यक्तराज्यवैभवसुख! राम,
सहजमोदमञ्जुलमुख! राम।
शरणागतहिताभिमुख! राम,
रागद्वेषपराङ्मुख! राम॥
रघुकुलमलयजचन्दन! राम।
जय कलिकलुषनिकन्दन राम॥ टेक॥

चित्रकूटविहिताश्रम राम,
दण्डकवनगमनश्रम राम।
श्रितमायामृगविभ्रम राम
दर्शितचण्डपराक्रम राम॥
दुष्टदशमुखस्कन्दन राम।
जय कलिकलुषनिकन्दन राम॥ टेक॥

हनुमत्परिपूजितपद राम,
सेवितसुग्रीवाङ्गद राम।
भरतभावनन्दितनद राम,
लक्ष्मणवात्सल्यप्रद राम॥
स्वीकृतशिवविधिवन्दन राम।
जय कलिकलुषनिकन्दन राम॥ टेक॥

भवहर भक्तिविभावन राम,
सरलप्रीत्यनुधावन राम।
गुहशबरश्रमणावन राम,
करुणार्द्र! पतितपावन राम॥
शमितार्त्तजनक्रन्दन राम।
जय कलिकलुषनिकन्दन राम॥ टेक॥

ब्रह्माद्वय सुबृहत्तम राम,
मायाधीश महत्तम राम।
महाराज! नृपसत्तम राम,
मर्यादापुरुषोत्तम राम॥
जीवन! हृदयस्पन्दन! राम।
जय कलिकलुषनिकन्दन राम॥ टेक॥

जय जय दशरथनन्दन! राम।
जय कलिकलुषनिकन्दन राम॥ टेक॥

माँकी कृपा

(महात्मा श्रीश्रीसीतारामदास ॐकारनाथजी महाराज)

(१)

हरिचरणका नाम हरिचरण होनेपर भी लोग उसे दुर्गादास कहते थे। इसका अवश्य ही कोई कारण था। उसने जब दीक्षा ली, तब उसके गुरुदेवने कहा कि 'बेटा! 'दुर्गा-दुर्गा' जपना।'

दुर्गा दुर्गेति दुर्गेति दुर्गानाम परं मनुः।
यो जपेत् सततं चण्डि जीवन्मुक्तः स मानवः॥

'चण्डिके! 'दुर्गा-दुर्गा-दुर्गा' नाम ही परम मन्त्र है। जो मनुष्य इस नामका निरन्तर जाप करता है, वह जीवन्मुक्त है।' श्रीगुरुदेवके मुखसे यह सुननेके बाद हरिचरणने 'दुर्गा-दुर्गा' बोलना प्रारम्भ किया। हरिचरण प्रातःकाल 'दुर्गा-दुर्गा' कहता हुआ उठता, अविराम 'दुर्गा-दुर्गा' बोलता स्नान करता और पूजाके अन्तमें 'दुर्गा-दुर्गा' उच्चारण करता हुआ शंखकी पोटली कन्धेपर रखकर बाहर निकल जाता।

हरिचरण जातिका शंखारी था। वह शंख (चूड़ियाँ) बेचकर जीविका चलाता था। इस प्रकार कुछ दिन 'दुर्गा-दुर्गा' बोलनेपर सब लोग उसको सामने दुर्गादास और पीछे दुर्गापागल कहने लगे। हरिचरण उनकी बातें न सुनकर अपने रंगमें 'दुर्गा-दुर्गा' बोलता रहता। वह दिनभर 'दुर्गा-दुर्गा' बोलता हुआ शंख बेचता फिरता। सन्ध्या हो जानेपर थका-माँदा घर लौटता और खा-पीकर 'दुर्गा-दुर्गा' बोलता हुआ सो जाता। उसकी ऐसी अवस्था हो गयी कि सोते रहनेपर भी उसकी जिह्वा जप करती रहती थी।

उसकी ऐसी दशा देखकर कामिनी-कांचनके क्रीतदास, भोगविष्ठाके कृमि पड़ोसियोंने निश्चय किया कि उसका मस्तिष्क विकृत हो गया है, नहीं तो वह दिन-रात 'दुर्गा-दुर्गा' क्यों करता? जब रोग-शोक, सुख-दुःख—सब समय हँसते-हँसते 'दुर्गा-दुर्गा' कहता है तो फिर पागल हो ही जायगा। जो वयस्क थे, वे दुर्गादास कहकर हँसी उड़ाते और दुष्ट लड़के दल बाँधकर बोलते—

दुर्गा वले दूगो खेपा शाँखा निये जाय।
दुर्गा तार पिछू पिछू घुरिया बेड़ाय॥

'दुर्गा, बोलता हुआ एक पागल शंख (चूड़ियाँ) लेकर घूमता है और दुर्गा उसके पीछे-पीछे घूमती है।'

यह सुनकर हरिचरणका शरीर रोमांचित हो उठता, वह पीछे घूमकर देखने लगता कि सचमुच उसके पीछे दुर्गाजी हैं या नहीं! तब बच्चे ताली बजा-बजाकर हँस उठते और उसके ऊपर धूल फेंकने लगते। यह सब सहन करता हुआ वह शंखकी पोटली कन्धेपर रखकर 'दुर्गा-दुर्गा' बोलता आगे बढ़ जाता। अस्तु, अविराम 'दुर्गा' नाम-जपके कारण उसके माता-पिताका दिया हुआ हरिचरण नाम लुप्त हो गया। जनतामें वह दुर्गादासके नामसे प्रसिद्ध हो गया, इसमें उसको कोई दुःख न था।

(२)

वैशाखका महीना था। दोपहरकी वेला, धूप धाँय-धाँय कर रही थी। दुर्गादास शंखकी पोटली कन्धेपर लेकर 'दुर्गा-दुर्गा' बोलता हुआ तारिजीपुरकी सीमाके आगे मैदानमें जा पहुँचा।

कुछ दूर जानेके बाद मैदानके बीचमें एक पोखरा पड़ा। दुर्गादास पोखरा पार कर गया। इतनेमें उसके कानमें एक आवाज आयी—'अरे लड़के! मुझे शंख देगा?' दुर्गादासने ऐसी मीठी आवाज कभी सुनी न थी। उसने पीछे मुड़कर देखा, एक स्त्री जलमें खड़ी पैर बढ़ाते हुए उसे बुला रही है। वह पीछे घूमकर अवाक् देखता रह गया। बहुत बड़े-बड़े लोगोंके घर शंख पहनाया, किंतु ऐसा रूप उसने कहीं भी न देखा था! वह बोला—'क्यों नहीं दूँगा, माँ!'

वह एक सघन पेड़के नीचे बैठ गया। धीरे-धीरे

वह स्त्री उसके पास आयी। उसका असाधारण-रूप देखकर दुर्गादासने सोचा कि लड़के ठीक ही कहते थे कि दुर्गा तेरे पीछे-पीछे घूमती है। वह स्त्री हँसती हुई पास आकर बोली—'बेटा! खूब बढ़िया शंख देखकर मुझे दे।'

दुर्गादास खूब बढ़िया-बढ़िया शंखकी चूड़ियाँ निकालकर पहनाने लगा। उस स्त्रीका अंग-स्पर्श होते ही दुर्गादासका शरीर रोमांचित हो उठा और वह थर-थर काँपने लगा। चूड़ियाँ पहनाते समय वह निरन्तर 'दुर्गा-दुर्गा' बोलता जा रहा था। उस स्त्रीने पूछा—'हाँ, लड़के! इस तरह 'दुर्गा-दुर्गा' क्यों करता है? और ऐसा बोलनेसे क्या होता है?'

दुर्गादासके मुँहसे शब्द नहीं निकल रहे थे। कुछ देर बाद वह बोला—'गुरु महाराजने 'दुर्गा-दुर्गा' बोलनेके लिये कहा है, इसी कारण बोलता हूँ, माँ! और 'दुर्गा-दुर्गा' बोलनेसे माँ दया करती है।'

स्त्री—'हाँ, लड़के! तुमने माँको देखा है?'

दुर्गादास—'नहीं माँ! मैंने ऐसा पुण्य ही कौन-सा किया है, जो माँको देख पाऊँगा?'

स्त्री—'क्यों? 'दुर्गा-दुर्गा' जपनेसे क्या नहीं हो सकता? यदि नहीं देख सकते तो जपते क्यों हो?'

दुर्गादासने कहा—'माँ! मैं मूर्ख आदमी हूँ, ठीकसे जानता नहीं। यदि नाम लेनेसे देखा जाता है तो मैं अवश्य देख पाऊँगा।'

चूड़ियाँ पहनायी जा चुकीं। तब स्त्रीने हँसते-हँसते कहा—'अरे लड़के! मेरे पास पैसा तो है ही नहीं। तुम्हें दाम कैसे दूँ? अपनी चूड़ियाँ खोल ले।'

दुर्गादास न जाने क्यों उदास हो गया और बोला—'ना, रहने दो न, स्त्री-जाति तो साक्षात् भगवती ही होती है। मैं आपके हाथसे शंख नहीं निकाल सकता। मुझे दामकी आवश्यकता नहीं'—ऐसा कहकर वह पोटली बाँधने लगा।

उस स्त्रीने कहा—'यह कैसे होगा? मैं तुमसे इस प्रकार बिना मूल्य दिये चूड़ियाँ कैसे पहनूँगी? अच्छा, एक काम करो, गाँवमें जाओ। मेरे बाबाका नाम उमापद भट्टाचार्य है। उनके पास जाकर दाम ले लेना। कहना, 'आपकी लड़कीने शंख पहना है, दाम दीजिये।' वे यदि कहें कि 'मेरे तो कोई लड़की नहीं है' तो तुम उनकी बात न मानना, कहना—'अभी-अभी शंख-चूड़ियाँ देकर आया हूँ, लड़की नहीं है, यह बात कैसे मान लूँ? और कहना—'दुर्गा माईकी प्रतिमाके नीचे सिंदोरेमें एक अठन्नी है, उसे देनेके लिये कहा है''—जाकर कहो, जाओ लड़के!

'अभी जाता हूँ, अभी जाता हूँ' कहते-कहते दुर्गादास चल पड़ा और स्त्री वापस जलमें उतर गयी।

(३)

पड़ोसी लोग जानते थे कि उमापद भट्टाचार्यको उधार देनेसे वापस मिलनेवाला नहीं है, फिर भी वे उधार दे देते थे।

उमापद भट्टाचार्यकी अवस्था सदासे ऐसी नहीं थी। पहले वे एक धनाढ्य व्यक्ति थे। समयने अचानक पलटा खाया और उनकी आर्थिक स्थिति गिरने लगी; परंतु उनकी वृत्तियाँ उत्तरोत्तर माँ दुर्गाकी ओर खिंचती ही गयीं। उन्होंने घरमें दुर्गाकी प्रतिमाकी प्रतिष्ठा की। उनका अधिकांश समय पूजा-पाठ, नाम-जप, ध्यान, आत्मचिन्तनमें व्यतीत होने लगा। साध्वी पत्नी अन्नपूर्णा भी पूजा-पाठकी संगिनी होकर सहधर्मिणी नामको सार्थक करने लगीं। पाँच-छः वर्षका पुत्र शिवराम 'दुर्गा-दुर्गा' बोलकर ताली देता और नृत्य करता, इससे माता-पिताका आनन्दवर्धन होता था। धीरे-धीरे उनकी भोगवासना क्षीण होने लगी।

उमापद भट्टाचार्य नित्य ब्राह्ममुहूर्त्तके पूर्व ही उठकर 'दुर्गा-दुर्गा' बोलते हुए स्नान करते, फिर प्रात:सन्ध्या, जप आदि करके गीता और चण्डी-स्तोत्रका पाठ करते। अन्तमें पूजन-हवन करके माँको भोग प्रदान करते। उसके बाद बलिवैश्वदेव, गोग्रास देकर अतिथिकी प्रतीक्षा करते थे। अतिथि-सेवाके बाद प्रसाद ग्रहण करके देवीभागवत, महाभागवत, देवीपुराण,

देव्युपनिषद् आदि ग्रन्थोंके अवलोकनमें अपराह्न व्यतीत करते थे। यथासमय सायं-सन्ध्या तथा देवीकी आरती करते दीपके प्रकाशमें बैठ जाते थे और बहुत देरतक जप एवं लीला-चिन्तन करते रहते। सायंकृत्य-समाप्तिके अन्तमें अतिथि-सेवा करके कुछ प्रसाद ग्रहण करते थे। फिर मध्य रात्रिमें जब जगत् निस्तब्ध हो जाता, तब वे हृदयकमलमें माँके आगमनकी राह देखते बैठे रहते। इस प्रकार उनके दिन बीतने लगे।

(४)

अन्नपूर्णा साक्षात् अन्नपूर्णा देवी ही थीं। 'दुर्गा-दुर्गा' बोलते हुए ही ये समस्त गृह-कार्य करतीं। पतिसेवा, देव-सेवा, अतिथिसेवामें ही वे सदा लगी रहतीं। उनकी जिह्वा क्षणभर भी 'दुर्गा-दुर्गा' कहनेसे नहीं रुकती थी।

उमापद भट्टाचार्यके कई एक पैतृक यजमान थे। उन्हें उपनयन और विवाहके सिवा और कभी पुरोहितकी आवश्यकता नहीं पड़ती थी, अतएव यजमान होना-न-होना समान था। उमापद किसी अन्य प्रकारकी अर्थ-चेष्टा नहीं करते थे, इसलिये अर्थोपार्जनकी उदासीनतासे धीरे-धीरे अर्थाभाव बढ़ने लगा। बाजारका उधार अधिक हो गया। यदि किसी दिन अभावकी बात मनमें आती तो वे इस प्रकार गुनगुनाने लगते—

भाविले शंकरिपद सम्पद् कोथा पाबे।
सम्पदनाशा जे पद नइले शिव केन श्मशानवासी हबे॥

'भवानीके चरणोंका चिन्तन करनेसे तुमको सम्पत्ति कहाँ मिलेगी? यदि वे पद सम्पत्ति-नाशक न होते तो शिवजी श्मशानके वासी क्यों होते?'

—और गाते-गाते तन्मयता इतनी बढ़ जाती कि उन्हें अभावका ज्ञान ही नहीं रह जाता।

उनके मनमें एक संशय रह-रहकर उठा करता था कि इष्टदेवका दर्शन भावरूपमें ही होता है अथवा चर्मचक्षुसे भी हो सकता है? कलिके जीव चर्मचक्षुके द्वारा इष्टदेवताका दर्शन प्राप्त कर सकते हैं या नहीं? इस संशयकी वे कोई मीमांसा नहीं कर सके। कविचक्रवर्ती जयदेवके 'गीत-गोविन्द' में '**देहि पदपल्लवमुदारम्**' किसने लिखा है—यह बात वे जानते थे। गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने कई बार भगवान् श्रीरामचन्द्रका दर्शन प्राप्त किया था, यह प्रसंग उन्होंने गोस्वामीजीकी जीवनीमें पढ़ा था। साधक रामप्रसाद सेनकी बेड़ा बाँधनेकी कहानी उन्होंने न सुनी हो, ऐसी बात भी न थी; तथापि उनको संशय था।

अर्थाभावके कारण क्रमशः जब ऋण अत्यधिक बढ़ गया, तब वे सोचने लगे—'अब और ऋण न लूँगा। किसीसे याचना भी न करूँगा। माँ भोजन देंगी तो खाऊँगा, न देंगी तो नहीं खाऊँगा। ऋण लेकर दूसरेकी हानि क्यों करूँ? देखूँ, माँ क्या व्यवस्था करती है? प्राण चले जायँ, वह स्वीकार है तथापि माँको छोड़कर और किसीसे याचना न करूँगा।'

सन्ध्या-पूजा आदि कर उन्होंने अन्नपूर्णासे माँको समर्पित करनेके लिये भोग माँगा, परंतु आज भोग देनेके लिये घरमें कुछ न था। दोपहर बीत गया है, वे ध्यानमग्न हैं, पुत्र शिवराम भूखसे तड़प रहा है, अन्नपूर्णा 'दुर्गा-दुर्गा' जप रही हैं।

इसी समय बाहरसे किसीने पुकारा—'ओ शिवराम! एक बार बाहर तो आ।' शिवराम आँखें पोंछते हुए बाहर आया। कुछ देर बाद एक छोटे दोनेमें कुछ आम और चार सन्देश लेकर घरमें लौटा और माँको देकर बोला—'माँ! एक आदमी देवीके भोगके लिये आम और सन्देश दे गया है।' कौन दे गया है, यह समझनेमें अन्नपूर्णाको देर न लगी। अश्रुसिक्त नेत्रोंसे उन्होंने सब लेकर भगवतीके सामने रख दिया। कुछ देरके बाद उमापदका ध्यान टूटा, उन्होंने देखा कि माँके सामने भोग रखा हुआ है, पूछा—'यह सब कहाँसे आया है?' अन्नपूर्णा बोलीं—'कोई दे गया है।' उमापद सोचने लगे—'क्या माँ पुरुषके आकारमें भी आती हैं?' उनके नेत्र बरस पड़े।

देवीको भोग लगाया गया। वे बोले—'माँने शिवरामके लिये प्रसाद भेजा है। हम तो उपवास ही करेंगे।' ऐसा

ही हुआ। 'दुर्गा-दुर्गा' जपते ब्राह्मण-दम्पतीका दिन-रात बीत गया। दूसरे दिन दोपहरको कोई एक कलशी दूध शिवरामके हाथमें दे गया। उससे माँका भोग लगा और शिवरामके जीवनकी पुनः रक्षा हुई। ब्राह्मण-दम्पतीको आज भी उपवास करना पड़ा। तीसरे दिन पूजा समाप्त हुई, दो पहर बीत गया। भूखसे तड़पकर शिवराम रोने लगा, वह किसी प्रकार भी चुप नहीं हो रहा था।

उमापद प्रतिमाके सामने जाकर बैठ गये और माँके मुखकी ओर देखकर पूछने लगे—'माँ! क्या तुम हो?' उन्होंने मानो माँके अधरोंपर एक क्षीण हास्यकी रेखा देखी। उसी समय बाहरसे किसीने पुकारा—'भट्टाचार्य महाशय घरपर हैं क्या?' उमापदने झाँककर देखा कि तीन संन्यासी खड़े हैं। वे दौड़कर बाहर गये, आदरपूर्वक उन्हें घरमें ले आये, उनके पैर धुलाये, बैठनेके लिये आसन दिया, तत्पश्चात् वे पंखा लेकर हवा करने लगे। तब उन अतिथियोंमें जो प्रधान थे, बोले—'कलसे हमको अन्न नहीं मिला है, हम बहुत भूखे हैं, हमारे भोजनकी व्यवस्था हो जाय तो अच्छा हो।'

उमापदके सिरपर तो मानो आकाश गिर पड़ा। 'क्या करूँ? कैसे अतिथि-सेवा करूँ? घरमें कुछ भी तो नहीं है, क्या होगा?' उनके नेत्रोंमें आँसुओंकी बाढ़-सी आ रही थी।

किवाड़की आड़में खड़ी अन्नपूर्णा 'दुर्गा-दुर्गा' कहकर रोने लगीं। उमापद उन्मत्तके समान माँकी प्रतिमाके पास दौड़े गये और फफक पड़े—'माँ! अतिथि विमुख होकर जाना चाहते हैं। हे विपद्-तारिणी माँ! हे महाभयविनाशिनी माँ! दुर्गे! दुर्गे! रक्षा करो, माँ!'

'दुर्गा! दुर्गा! दुर्गा! माँ! आज इस विपत्तिमें मेरी रक्षा करो। पुत्र भले ही चला जाय, इसका मुझे दुःख नहीं है, परंतु अतिथि विमुख होकर न जायँ, रक्षा करो, माँ!'

'बाहरसे अतिथि पुकार उठे—महाशय! क्या हम लौट जायँ?'

उमापद पागल-से हो रहे थे—'घरसे अतिथि लौट जायगा, क्या करूँ? किससे क्या प्रार्थना करूँ? मैंने माँके सामने प्रतिज्ञा की है कि माँको छोड़कर और किसीसे कुछ नहीं माँगूँगा।' बाहरसे अतिथिलोग फिर बोले—'हमको बहुत प्यास लगी है, थोड़ा जल ले आइये।'

उधर अन्नपूर्णा भी माँके सामने लोट-लोटकर रो रही थीं।

उमापदने कहा—'अन्नपूर्णे! घर खूब तिल-तिल करके देखो, कहीं कुछ हो तो लेकर आओ, मैं जल ले जाता हूँ।' इतनेमें एक बिल्लीने कूदकर जलकी कलशीको भी गिरा दिया। कैसी विडम्बना है! घरमें एक बूँद जल भी नहीं है। 'नहीं, नहीं, मैं अतिथिको विमुख जाते नहीं देख सकता। उससे पहले आत्महत्या कर लूँगा।'—इतना कहकर माँके हाथसे पाश लेकर वे आत्महत्याकी तैयारीमें लग गये।

ठीक उसी समय दुर्गादासने जाकर पुकारा—'भट्टाचार्य महाशय! भट्टाचार्य महाशय! क्या कर रहे हैं? एक बार बाहर आइये!' उन्होंने पाश फेंक दिया और सोचने लगे—'फिर किसने पुकारा? देखें कौन हैं?' वे माँ-माँ बोलते हुए बाहर निकले। अधिक विलम्बके कारण अतिथियोंकी सहनशीलताका बाँध टूट चुका था। अतः वे जानेका उपक्रम करते हुए बोले—'महाशय! आखिर बात क्या है, इतनी देरी क्यों…?' वे हाथ जोड़कर कातर स्वरसे बोले—'दया करके थोड़ी-सी प्रतीक्षा और करें।' तत्पश्चात् वे आगन्तुककी ओर उन्मुख हुए।

दुर्गादास बोला—'आपकी लड़कीने शंख पहना। दाम दीजिये।'

उमापद—क्या बोलते हो?

दुर्गादास—आपकी लड़कीने मुझसे शंख पहना है, दाम दीजिये।

उमापदने चकित होकर कहा—'यह क्या? मेरी तो लड़की ही नहीं है।'

दुर्गादास बोला—'आप ऐसी ही बात कहेंगे, यह उन्होंने पहले ही कह दिया है; मुझसे उन्होंने कह दिया

है कि यह बात न सुनना।'

उमापद—'लड़कीको कहाँ देखा तुमने?'

दुर्गादास—'उस मैदानमें पोखरीपर।'

उमापद—'विचित्र घटना है! मेरी लड़की! अच्छा, देखनेमें वह कैसी थी?'

दुर्गादासने कहा—'वह साक्षात् दुर्गाकी प्रतिमा लगती थी! मैंने ऐसा रूप आजतक कहीं नहीं देखा। हाँ, उन्होंने कहा था कि दुर्गामाईकी प्रतिमाके नीचे एक अठन्नी है, कृपया उसे जल्दीसे लाकर मुझे दे दें।'

उमापद—झटपट घरमें गये। देखा कि सिंदोरेमें सचमुच एक अठन्नी है। उन्होंने वह अठन्नी उठा ली। देखा कि एक और अठन्नी है। उसे भी ले लिया। फिर देखा, एक और अठन्नी! यह क्या तमाशा है? सिंदोरेमें ये अठन्नियाँ कहाँसे आ रही हैं? हाथ अठन्नियोंसे भर गया। एक छोटे-से सिंदोरेमें इतनी अठन्नी! यह कैसा इन्द्रजाल है? माँके मुखकी ओर देखकर बोले—'जादूगरनी माँ! यह कैसा जादू है?'

इसी समय बाहरसे किसीने पुकारा—'भट्टाचार्य महाशय घरपर हैं?' उन्होंने भीतरसे ही उत्तर दिया—'हाँ, हैं; क्या बात है?'

'जमींदार बाबूने माँके भोगके लिये यह सीधा (अन्नादि) भेजा है।' आवाज आयी। उन्होंने बाहर जाकर देखा—एक बड़े पात्रमें दस-बारह व्यक्तियोंके भोजनके लिये पर्याप्त चावल, दाल, तेल, नमक, तरकारी, आम, सन्देश और मिठाई लिये एक व्यक्ति खड़ा है! इस बार उमापद 'करुणामयि! करुणामयि!' कहकर रोने लगे। फिर थोड़ा धैर्य धारण करके वहींसे अतिथियोंको आवाज देते हुए बोले—'महाशयगण! आपलोगोंके भोजनकी अभी व्यवस्था करता हूँ; परंतु ज्यों ही घरमें आकर देखा—'यहाँ तो कोई नहीं है। महाविपत्ति! अतिथि विमुख होकर चले गये!' दुर्गादास सदर दरवाजेपर खड़ा था। उससे पूछा—'भैया! बताओ तो संन्यासी लोग किधर गये?' दुर्गादास बोला—'इस घरसे कोई बाहर नहीं गया, कम-से-कम इधरसे तो कोई नहीं गया।' उमापदने कहा—'इस घरका दूसरा द्वार तो है नहीं, तो क्या मुझे दृष्टिभ्रम हो गया? मैं जाग्रत्-अवस्थामें स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ? माँ! माँ! यह क्या पहेली है? माँ! दुर्गा! दुर्गा!! दुर्गा!!! यह कैसी परीक्षा माँ?' वे बच्चोंकी भाँति फूट-फूटकर रोने लगे।

कुछ देर बाद उठकर उन्होंने आम और मिठाई देवीको निवेदन करके दुर्गादास और शिवरामको प्रसाद दिया। स्वयं चरणामृत लिया। दुर्गादासके भोजन कर लेनेपर उसके हाथमें अठन्नी देकर उमापद बोले—'तुमने मेरी लड़कीको कहाँ देखा है, मुझे शीघ्र वहाँ ले चलो।' दुर्गादास भी आश्चर्यचकित था? उसने अतिथिगणको घरमें देखा था, उसके बाद वे कहाँ चले गये, यह निश्चित न कर सका। अस्तु, दोनों पोखरीकी ओर लपके।

उमापदने पूछा—'कहाँ देखा था, भैया?' दुर्गादासने कहा—'इसी पोखरीके घाटपर थी।' परंतु अब उस स्थानपर कोई न था। 'अरी माँ! अविश्वासीके अविश्वासको चूर्ण-चूर्ण करके कहाँ छिप गयी, माँ! एक बार दर्शन दो, माँ! एक बार आओ, माँ! तुझमें इतनी करुणा है। यह मैं नहीं जानता था, माँ!' उमापद व्याकुल हो माँ-माँ पुकारने लगे।

दुर्गादासकी समझमें अब आया कि आज उसने किसको शंख पहनाया है, अबतक उसे इसका ज्ञान न था। वह भी रो पड़ा—'अरे, मैं माँको पाकर भी न पहचान सका!' वह पेट पकड़कर रोने लगा—'अरी माँ! एक बार फिर दर्शन दे! तुमने स्वयं शंख पहना है न? एक बार बोलो, माँ! मेरी बातको सत्य करो, माँ!' वह पागलकी भाँति इधर-उधर दौड़ने लगा।

धीरे-धीरे पोखरीके काले जलका भेदन करके शंख पहने लाल-लाल दो सुन्दर हाथ बाहर निकले। 'वही माँ है! वही माँ है!!'—कहते-कहते दोनों व्यक्ति मूर्च्छित होकर गिर पड़े!

कश्मीर-प्रदेशके शक्तिपीठ

(पं० श्रीजानकीनाथजी कौल 'कमल', एम० ए०, बी० टी०, प्रभाकर)

नीलमतके अनुसार पर्वतराज हिमालयके उत्तर-पश्चिम भागमें लक्ष्मीका प्रदेश (कश्यपपीठ) कश्मीर प्रकृतिकी सुरम्यस्थली है। यह भारतवर्षमें ही नहीं, संसारभरमें अपनी रमणीयताके लिये विशेष प्रसिद्ध है। शक्ति-उपासनाके आधाररूपमें यह प्रदेश अति प्राचीनकालसे विशेष आदर पाता रहा है। रुद्रयामल-तन्त्रमें कहा है—**'शैवीमुखमिहोच्यते'** अर्थात् शक्ति-शिवके साक्षात्कारका यह प्रवेशद्वार है।

'नीलमत-पुराण' इसका स्थलपुराण है। तदनुसार यहाँ भगवती शारदा, भगवती राजराजेश्वरी लक्ष्मी (श्रीनगर) महारानी, भगवती शारिका, भगवती ज्वालाके रूपमें शक्ति-उपासना की जाती रही है। कहते हैं कि आद्यशंकराचार्यको यहाँके 'शारदा-पीठ' (जो अब पाकिस्तान-अधिकृत कश्मीरमें है)-से ही 'जगद्गुरु' की महान् उपाधि प्राप्त हुई थी। भारतके प्रसिद्ध ५१ शक्ति-महापीठोंमेंसे यहाँ श्रीनगरमें सतीके अंग तथा अङ्गभूषण-कण्ठप्रदेशकी पूजा होती है। शक्तिका नाम 'महामाया' है और भैरव 'त्रिसन्ध्येश्वर' हैं। कश्मीरके कतिपय अन्य शक्तिपीठोंका परिचय इस प्रकार है—

राजराजेश्वरी श्रीमहाराज्ञी

यह तीर्थस्थान श्रीनगरसे २८ कि०मी० दूर तूलमूल ग्राममें है। यहाँ षट्कोण तथा ओंकारके आकारका अमृतकुण्ड (चश्मा या नाग) है, जिसके मध्य महाराज्ञीका मूर्ति-विग्रह संगमरमरके सुन्दर मन्दिरमें स्थापित है। इस सुन्दर भूमि-भागमें चारों ओर सिन्धुनदीका नाला बहता है। भगवतीके ध्यानका इस प्रकार वर्णन किया गया है—

या द्वादशार्कपरिमण्डितमूर्तिरेका
सिंहासनस्थितिगता ह्युरगैर्वृता च।
देवीमतर्क्यगतिमीश्वरतां प्रपन्नां
तां नौमि भर्गवपुषीं परमार्थराज्ञीम्॥[1]

चक्रेश्वरी श्रीशारिका

ये द्वारि-पर्वतके मध्य विराजमान हैं। इसे 'शारिकाशैल' भी कहते हैं। कहा जाता है कि भगवतीने सारिकाका रूप धारणकर अपनी चोंचसे कण-कण डालकर इसे बनाया। 'सारिका'से ही 'शारिका' बन गया। 'ध्यानरत्नमाला'में देवीका ध्यान इस प्रकार वर्णित है—

बीजैः सप्तभिरुज्ज्वलाकृतिरसौ या सप्तसप्तिद्युतिः
सप्तर्षिप्रणताङ्घ्रिपङ्कजयुगा या सप्तलोकार्तिहृत्।
कश्मीरप्रवरेशमध्यनगरे प्रद्युम्नपीठे स्थिता
देवीसप्तकसंयुता भगवती श्रीशारिका पातु नः॥[2]

द्वारि-पर्वतके स्थान-स्थानपर देवी-देवताओंके निर्देश हैं। यहाँ त्रिकोटि देवताओंका वास है। भक्तजन नित्यप्रति

१. इस श्लोकका तात्पर्य इस प्रकार है—जिन भगवतीका श्रीविग्रह द्वादश आदित्योंकी प्रभासे विद्योतित है, जो अनुपमेय हैं, सिंहके आसनपर विराजमान हैं, सर्पोंसे सेवित हैं, अचिन्त्य सामर्थ्यशालिनी तथा परमैश्वर्यमें अधिष्ठित हैं, उन तेजोमयी एवं परमार्थकी अधिष्ठात्री श्रीराजराजेश्वरी देवीको प्रणाम करता हूँ।

२. इस श्लोकका तात्पर्य इस प्रकार है—सप्तबीजोंके द्वारा जिनकी आकृति सदा उज्ज्वल बनी रहती है एवं जिनकी प्रभा सूर्यके समान है। जिनके कमलकी तरह सुन्दर युगल चरणोंमें सदा सप्तर्षिगण प्रणत रहते हैं। जो सातों लोकोंका दुःख सदा हरण करती हैं, जो अत्युत्तम कश्मीर मण्डलकी मध्यनगरीके प्रद्युम्नपीठपर विराजमान रहती हैं। सात देवियोंके साथ सदा रहनेवाली वे भगवती श्रीशारिकाजी हम सभीकी रक्षा करें।

विशेषकर प्रात:काल इस श्रेष्ठ पर्वतकी परिक्रमा करते हैं, जो लगभग चार किलोमीटर है।

ऊपर कहे दोनों तीर्थस्थानोंमें रुद्रयामलतन्त्रान्तर्गत भवानीनामसहस्रस्तवराज तथा कालिदासकृत 'पञ्चस्तवी' (जिसमें लघुस्तव, चर्चास्तव, घटस्तव, अम्बास्तव और सकलजननीस्तव—ये पाँच स्तव हैं।)-का पाठ किया जाता है। आद्यशंकराचार्यकृत 'सौन्दर्यलहरी' का भी यहाँ अधिक प्रचार रहा है। ये ग्रन्थ षट्चक्र-रहस्य और श्रीचक्र-विश्लेषणमें उत्तम माने जाते हैं, फिर भी यहाँके साधारण जनमें भवानीनामसहस्रशक्ति-उपासनाका विशेष माध्यम रहा है। इस स्तवराजका पाठ और जप प्राचीन कालसे होता चला आ रहा है। यह इसकी बहुसंख्यक प्राचीन प्राप्त हस्तलिपियोंसे ज्ञात होता है।

श्रीसाहिब कौल शक्ति-साधनाके विशेष आचार्य हुए हैं। जिन्होंने 'भवानीसहस्रनाम' पर 'देवीनामविलास' नामसे विशद व्याख्या लिखी है।

श्रीज्वालाजी

इनका विशाल मन्दिर श्रीनगरसे १८ किलोमीटर दूर खिब गाँवमें पर्वत-खण्डपर स्थित है। यहाँ आषाढ़ शुक्ल चतुर्दशीको एक बड़ा मेला लगता है। भक्तजन पर्वतपादमें स्थित जल-कुण्डमें स्नान-तर्पण और अर्चन-ध्यानकर पत्थर-निर्मित सीढ़ियोंसे ऊपर जाकर ज्वाला देवीजीका दर्शन-पूजन करते हैं।

कुलवागीश्वरी

श्रीनगरसे लगभग ६० कि०मी० दूर अनन्तनागके प्रान्तमें कुलगामके स्थानपर देवीके कुण्ड तथा मन्दिर हैं। 'नीलमतपुराण' के अनुसार और भी कई मन्दिर हैं, जो कश्मीरी-पण्डितजनोंकी अधिष्ठात्री देवियाँ हैं। विशेष गृहस्थोंके साथ विशेष देवियाँ जुड़ी हैं। इनके अतिरिक्त बहुत-से और शक्ति-स्थान कश्मीरमें विद्यमान हैं। उनका वर्णन स्थानाभावके कारण यहाँ नहीं दिया जा सका है।

क्षीरभवानी योगमाया

कश्मीरकी राजधानी श्रीनगरसे पन्द्रह मील उत्तर 'गन्धर्व'-स्थान है। इसके पास ही क्षीरभवानी योगमायाका मन्दिर है। चारों ओर जल और बीचमें एक टापू है। इस स्थानकी शोभा अत्यन्त सुरम्य है। चिनारोंके वृक्षोंकी पंक्ति और मन्दिरकी पवित्रता तथा प्राकृतिक सुन्दरता भावुक धार्मिक पर्यटकोंकी दृष्टि सहज ही आकृष्ट कर लेती है। ज्येष्ठ शुक्ल अष्टमीको यहाँ एक बड़ा मेला लगता है। प्राय: वैदिक विधिसे यहाँ साधना करनेकी परम्परा है। क्षीरभवानीके मण्डपके चारों ओर कुण्ड-जलके रंग-परिवर्तनपर श्रद्धालु शुभाशुभका विचार करते हैं।

माता सारिका देवी

खड्ग परशु, खट्वांग, गदा, अंकुश, त्रिशूल वर।
डमरु, पाश, पुस्तक, तोमर, मूसल, शुभ मुग्दर॥
चक्र, बाण, शुचि धनुष, अभय-वर-मुद्रा धारण।
नर-कपाल अष्टादशभुज शशि-शिर शुभ कारण॥
शोभित आभूषण-वसन अङ्ग-अङ्ग अति द्युति बिमल।
सकल सुमङ्गल-मूल मृदु मातु सारिका-पद-कमल॥

[पद-रत्नाकर]

कैसे बनें भगवान्‌के प्रेमी भक्त ?

(डॉ० श्रीभीकमचन्दजी प्रजापति)

महिमा—भगवान्‌को सबसे ज्यादा प्यारा लगता है—उनका अपना प्रेमी भक्त। श्रीमद्भागवतमें भगवान्‌की वाणी है—

न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शङ्करः।
न च सङ्कर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान्॥

(११।१४।१५)

अर्थात् हे उद्धव! मुझे तुम-जैसे प्रेमी भक्त जितने प्रियतम हैं, उतने प्रिय मेरे पुत्र ब्रह्मा, आत्मा शङ्कर, सगे भाई बलरामजी, स्वयं अर्धांगिनी लक्ष्मीजी और मेरा अपना आत्मा भी नहीं है।

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता॥

(११।१४।२०)

अर्थात् हे उद्धव! योग-साधन, ज्ञान-विज्ञान, धर्मानुष्ठान, जप-पाठ और तप-त्याग मुझे प्राप्त करानेमें उतने समर्थ नहीं हैं, जितनी दिनों दिन बढ़नेवाली अनन्य प्रेममयी मेरी भक्ति।

भक्त्याहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयाऽऽत्मा प्रियः सताम्।
भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि सम्भवात्॥

(११।१४।२१)

अर्थात् मैं सन्तोंका प्रियतम आत्मा हूँ। मैं अनन्य श्रद्धा और अनन्य प्रेमसे ही पकड़में आता हूँ। मुझे प्राप्त करनेका यह एक ही उपाय है। मेरी अनन्य भक्ति उन लोगोंको भी पवित्र—जातिदोषसे मुक्त कर देती है, जो जन्मसे ही चाण्डाल हैं।

श्रीरामचरितमानसमें भगवान्‌की वाणी है—

भगतिवंत अति नीचउ प्रानी। मोहि प्रानप्रिय असि मम बानी॥

(७।८६।१०)

अर्थात् भक्तिमान् अत्यन्त नीच भी प्राणी मुझे प्राणोंके समान प्रिय है, यह मेरी घोषणा है।

गुणों एवं सुखका महत्त्व नहीं—आपके पास स्वस्थ शरीर एवं सबल इन्द्रियोंका सुख है; सेवाभावी पत्नी, पति, संतान आदि परिवारजनोंका सुख है; धन, सम्पति, विशाल भवन, जेवर, आभूषण, कारों-गाड़ियों, मान-सम्मान, यश-प्रतिष्ठा आदिका सुख है; आपके व्यक्तित्वमें अनेक गुण हैं—आप बहुत विद्वान् हैं, बहुत पढ़े-लिखे हैं, बहुत बलवान् हैं, शक्तिशाली हैं, बहुत उच्च पदपर कार्यरत हैं, आदि आदि, लेकिन यदि आपके जीवनमें भक्ति नहीं है तो इन सबका कोई खास महत्त्व नहीं है। श्रीरामचरितमानसमें भगवान् श्रीरामकी वाणी है—

कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानउँ एक भगति कर नाता॥
जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुन चतुराई॥
भगति हीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल बारिद देखिअ जैसा॥

(३।३५।४—६)

अर्थात् श्रीरघुनाथजीने (शबरी)-से कहा—हे भामिनि! मेरी बात सुनो! मैं तो केवल एक भक्तिका ही सम्बन्ध मानता हूँ। जाति, पाँति, कुल, धर्म, बड़ाई, धन, बल, कुटुम्ब, गुण और चतुरता—इन सबके होनेपर भी भक्तिसे रहित मनुष्य कैसा लगता है, जैसे जलहीन बादल (शोभाहीन) दिखायी पड़ता है।

भगति हीन बिरंचि किन होई। सब जीवहु सम प्रिय मोहि सोई॥

(७।८६।९)

अर्थात् भक्तिहीन ब्रह्मा ही क्यों न हो, वह मुझे सब जीवोंके समान ही प्रिय है।

सब सुख खानि भगति तैं मागी। नहिं जग कोउ तोहि सम बड़भागी॥
जो मुनि कोटि जतन नहिं लहहीं। जे जप जोग अनल तन दहहीं॥
रीझेउँ देखि तोरि चतुराई। मागेहु भगति मोहि अति भाई॥
सुनु बिहंग प्रसाद अब मोरें। सब सुभ गुन बसिहहिं उर तोरें॥
भगति ग्यान बिग्यान बिरागा। जोग चरित्र रहस्य बिभागा॥
जानब तैं सबही कर भेदा। मम प्रसाद नहिं साधन खेदा॥

माया संभव भ्रम सब अब न ब्यापिहहिं तोहि।
जानेसु ब्रह्म अनादि अज अगुन गुनाकर मोहि॥

(७।८५क।३—८, ८५क)

अर्थात् तूने सब सुखोंकी खान भक्ति माँग ली।

जगत्‌में तेरे समान बड़भागी कोई नहीं है। वे मुनि जो जप और योगकी अग्निसे शरीर जलाते रहते हैं, करोड़ों यत्न करके भी जिसको (जिस भक्तिको) नहीं पाते। वही भक्ति तूने माँगी। तेरी चतुरता देखकर मैं रीझ गया। यह चतुरता मुझे बहुत ही अच्छी लगी। हे पक्षी! सुन, मेरी कृपासे अब समस्त शुभ गुण तेरे हृदयमें बसेंगे। भक्ति, ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य, योग, मेरी लीलाएँ और उनके रहस्य तथा विभाग—इन सबके भेदको तू मेरी कृपासे ही जान जायगा। तुझे साधनका कष्ट नहीं होगा।

मायासे उत्पन्न सब भ्रम अब तुझको नहीं व्यापेंगे। मुझे अनादि, अजन्मा, अगुण (प्रकृतिके गुणोंसे रहित) और (गुणातीत दिव्य) गुणोंकी खान ब्रह्म जानना।

श्रीरामचरितमानसमें आया है—

भगति हीन गुन सब सुख ऐसे। लवन बिना बहु बिंजन जैसे॥
भजन हीन सुख कवने काजा।

(७। ८४क। ५-६)

अर्थात् भक्तिसे रहित सब गुण और सब सुख वैसे ही (फीके) हैं, जैसे नमकके बिना बहुत प्रकारके भोजनके पदार्थ। भजनसे रहित सुख किस कामके?

कैसे बनें प्रेमी भक्त—जिसके जीवनमें तीन बातें होती हैं, वह प्रेमी भक्त बन जाता है—

(१) कुछ नहीं रखना—प्रेमी भक्त वह होता है, जो अपने पास कुछ भी नहीं रखता है—न सामान, न मकान, न कुटिया, न आश्रम, न सम्पत्ति; न पति, पत्नी, संतान, माता-पिता, भाई-बहन आदि परिवारजन, न सेवक, न शिष्य; न शरीर, न इन्द्रियाँ, न मन, न बुद्धि, न विवेक; न स्वयं अपने आपको। प्रेमी सर्वथा अकिंचन होता है।

रहस्यकी बात—प्रश्न उठता है—कुछ न रखनेसे जीवन कैसे चलेगा, शरीरका निर्वाह कैसे होगा, क्या शरीरको भी नहीं रखेगा आदि आदि। इनका उत्तर है—प्रेमी अपने पास 'अपना मानकर' कुछ नहीं रखता है, एक बाल (केश) भी नहीं; लेकिन अपने प्रेमास्पद प्रभुका मानकर इन सबको रखता है। क्यों रखता है? इसका उत्तर है—अपने प्रेमास्पद प्रभुकी प्रसन्नताके लिये, न कि अपने सुख, अपनी प्रसन्नताके लिये। अपना माननेका नाम है—मोह, ममता; अपनेको इनका मालिक मानना, इनसे सुख लेनेकी आशा, इच्छा रखना। आशा, इच्छा ही बन्धन है, फँसावट है, जन्म-मरणका मूल कारण है। इनकी विशुद्ध सेवाके लिये इनको मेरा मानना बन्धन नहीं है। इनको प्रभुकी मानें और प्रभुकी प्रसन्नताके लिये इनकी सेवा करना तो महान् भक्ति है। श्रीरामचरितमानसमें भगवान् श्रीरामकी वाणी है—

जननी जनक बंधु सुत दारा। तनु धनु भवन सुहृद परिवारा॥
सब कै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँध बरि डोरी॥
समरदरसी इच्छा कछु नाहीं। हरष सोक भय नहिं मन माहीं॥
अस सज्जन मम उर बस कैसें। लोभी हृदयँ बसइ धनु जैसें॥

(५। ४८। ४—७)

इसका अर्थ है—माता, पिता, भाई, पुत्र, स्त्री, शरीर, धन, घर, मित्र और परिवार—इन सबके ममत्व-रूपी तागोंको बटोरकर और उन सबकी एक डोरी बटकर उसके द्वारा जो अपने मनको मेरे चरणोंमें बाँध देता है (सारे सांसारिक सम्बन्धोंका केन्द्र मुझे बना लेता है), जो समदर्शी है, जिसे कुछ इच्छा नहीं है और जिसके मनमें हर्ष, शोक और भय नहीं है, ऐसा सज्जन मेरे हृदयमें कैसे बसता है, जैसे लोभीके हृदयमें धन बसा करता है।

(२) कुछ नहीं करना—तीन शब्द हैं—प्रेम, प्रेमी और प्रेमास्पद। प्रेमका अर्थ है—प्रसन्नता। प्रेम देनेका अर्थ है—प्रसन्नता देनेकी भावना रखना और प्रसन्नता देना। प्रेमीका अर्थ है—प्रेम या प्रसन्नता देनेवाला; जो प्रेम देता है, उसका नाम है—प्रेमी। जिसको प्रेम देते हैं, उसका नाम है—प्रेमास्पद। यहाँ प्रेमीका नाम है—प्रेमी भक्त और प्रेमास्पदका नाम है—भगवान्।

विभिन्न कार्य—चौबीस घण्टेमें मानव अनेक प्रकारके कार्य करता है—जैसे शरीरके कार्य—सोना, उठना, शौच जाना, स्नान करना, टहलना, व्यायाम-प्राणायाम करना, नाश्ता एवं भोजन करना, आराम करना आदि; घर-परिवारके कार्य जैसे घरकी सफाई करना, कपड़े धोना, भोजन बनाना, बर्तन साफ करना, बच्चोंका लालन-पालन करना, उनको स्कूल भेजना, पढ़ाना, परिवारके सदस्योंकी सेवा करना आदि; सामान, सम्पत्तिकी सँभाल एवं सुरक्षा; नौकरी, व्यवसाय, समाज, संसारके कार्य; भगवान्‌के दर्शन, भगवान्‌की पूजा, भगवान्‌के नामका जप, भगवान्‌का ध्यान, ग्रन्थोंका पाठ, भगवान्‌की लीलाओंका श्रवण, पठन, गुणगान, तीर्थ, व्रत आदि।

तीन उद्देश्य—इन सब कार्योंको करनेके तीन उद्देश्य हो सकते हैं—अपना सुख, पर (दूसरोंका)-हित, प्रभुकी प्रसन्नता।

प्रेमी भक्त—प्रेमी भक्त वह होता है, जो अपने सुख-सम्पादनके उद्देश्यसे कोई भी कार्य, कुछ भी नहीं करता है, कुछ भी नहीं सोचता है; लेकिन अपने प्रेमास्पद प्रभुकी प्रसन्नताके लिये सब कुछ करता है, निरन्तर सोचता रहता है। प्रेमी भक्तका जीवन, उसके जीवनका एकमात्र उद्देश्य होता है—अपने प्रेमास्पद प्रभुकी प्रसन्नता; उसका चिन्तन होता है—प्रेमास्पद प्रभुकी प्रसन्नता; उसकी सभी प्रवृत्तियों (कार्यों)-का उद्देश्य होता है—प्रेमास्पद प्रभुकी प्रसन्नता; उसकी निवृत्तिका उद्देश्य होता है—अपने प्रेमास्पद प्रभुकी प्रसन्नता। अपने प्रेमास्पद प्रभुकी प्रसन्नताके लिये प्रेमी सोता है, उठता है, शौच-स्नान आदिसे निवृत्त होता है। अपने प्रेमास्पद प्रभुकी प्रसन्नताके लिये प्रेमी अपने प्रभुके दर्शन करता है, उनको प्रणाम करता है, उनका नाम जपता है, उनका ध्यान करता है, उनकी लीलास्थलियोंके दर्शन करता है, उनकी लीलाओंको सुनता है, सुनाता है, गाता है, कथा-प्रवचन सुनता है, सुनाता है। केवल प्रभुकी प्रसन्नताके लिये सभी शारीरिक, पारिवारिक, सामाजिक, सांसारिक कार्य करता है। अपने सुखके बारेमें वह न कभी कुछ सोचता है, न कभी कुछ करता है। भगवान्‌की परम प्रेमी भक्त राधाजी और ब्रज-गोपियोंके जीवन, सभी प्रवृत्तियों, निवृत्तियोंका एकमात्र उद्देश्य था—अपने प्रेमास्पद श्रीकृष्णकी प्रसन्नता।

सर्वस्व त्याग—प्रेमीके हृदयमें अपने प्रेमास्पद प्रभुको प्रेम देनेका भाव इतना प्रबल होता है कि उनकी प्रसन्नताके लिये वह अपना सर्वस्व न्योछावर करने, अपने प्राणोंका परित्याग करने, भीषणतम नारकीय यातनाएँ भोगने और बड़े-से-बड़ा कलंक सहन करनेके लिये सदैव सहर्ष तैयार रहता है। उसको अपने सुख-दुःखका आभास ही नहीं होता है।

प्रेमी भक्तकी प्रार्थना—प्रेमी तो अपने प्रेमास्पदसे यहाँतक निवेदन करता है कि हे प्रेमास्पद! यदि आपकी प्रसन्नता मुझे नरकमें रखनेमें है, रोगी और निर्धन बनानेमें है, अपमानित करवानेमें है, घाटा लगानेमें है, प्रियजनोंके प्रतिकूल व्यवहार और उनके वियोगमें है तो एक जन्म नहीं, असंख्य कल्पोंतक मुझे रौरव नरकमें डाल दीजिये, एक इंसानसे नहीं, सम्पूर्ण ब्रह्माण्डसे मुझे अपमानित करवा दीजिये, इस ब्रह्माण्डका निर्धनतम व्यक्ति बना दीजिये, शरीरके रोम-रोममें असंख्य रोग पैदा कर दीजिये, प्रियतम-प्रियजनों और इस शरीरका वियोग कर दीजिये। यदि आपकी प्रसन्नता इन सबमें है तो मुझे ये सब सहर्ष स्वीकार हैं। प्रेमीकी दृष्टि अपने प्रेमास्पदकी प्रसन्नतापर रहती है, पथमें आनेवाली कठिनाइयोंपर नहीं। पथकी कठिनाइयोंके परिणामस्वरूप प्रेमीके बाह्य जीवनमें जो तकलीफ आती हुई दिखायी देती है, प्रेमास्पदकी प्रसन्नतासे मिलनेवाले अलौकिक आनन्दमें वह तकलीफ इसी प्रकारसे घुलमिल जाती है, जैसे समुद्रमें नमकका एक कण, प्रेमीको उस तकलीफका पता ही नहीं चलता है।

प्रेममूर्ति श्रीराधाजीकी प्रार्थना—श्रीराधाजी भगवान्‌से प्रार्थना करती हैं—

मिलती अगर सान्त्वना तुमको मेरे दु:खसे, हे प्रियतम।
तो लाखों अतिशय दु:खोंसे घिरी रहूँगी मैं हरदम॥
किंचित्-सा भी यदि सुख देता हो तुमको मेरा अपमान।
तो लाखों अपमानोंको मैं मानूँगी प्रभुका वरदान॥
यदि प्यारे! मेरे वियोगमें मिलता तुम्हें कहीं आराम।
कभी नहीं मिलने का मैं व्रत लूँगी, मेरे प्राणाराम॥
मेरी आर्ति-विपत्ति कदाचित् तुम्हें सुहाती हो यदि श्याम।
तो रखूँगी इन्हें पास मैं सपरिवार नित, दे आराम॥
मेरा मरण तुम्हें यदि देता हो किंचित्-सा भी आश्वास।
तो मैं मरण वरण कर लूँगी, निकल जायेगा तन से श्वास॥
सुखी रहो तुम सदा एक बस, यही नित्य मेरे मन चाह।
हर स्थिति में मैं सुखी रहूँगी, नहीं करूँगी कुछ परवाह॥

(भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार—पद-रत्नाकर, पद सं० ७२७)

इसका भाव इस प्रकार है—श्रीराधाजी भगवान्‌से प्रार्थना करती हैं—हे भगवन्! यदि आपकी प्रसन्नता इसमें हो कि मेरे जीवनमें दु:ख आये, मेरा अपमान हो, आपसे मेरा वियोग हो जाय, मेरे जीवनमें खूब विपत्तियाँ आयें, मैं मर जाऊँ तो आप ऐसा सब कुछ मेरे साथ कर दीजिये। मैं इन सबमें प्रसन्न रहूँगी।

(३) कोई इच्छा नहीं होना—प्रेमी भक्त वह होता है जिसकी अपनी कोई इच्छा नहीं होती है, लेकिन जिसकी एक जबरदस्त इच्छा होती है कि मेरे प्रेमास्पद प्रभुकी इच्छा पूरी हो और मेरे प्रभु प्रसन्नचित्त रहें। इसलिये प्रेमी अपने प्रेमास्पद प्रभुसे सदैव यही निवेदन करता है—

मेरी चाही करन की, जो है तुम्हरी चाह।
तो अपनी चाही करो, यह है मेरी चाह॥
तुम्हरी चाही में प्रभु, है मेरा कल्याण।
मेरी चाही मत करो, मैं मूरख अनजान॥
चाह तुम्हारी ही हो प्यारे! नित्य-निरन्तर मेरी चाह।
चाह न रहे अलग कुछ मेरी, नहीं किसी की हो परवाह॥
चलता रहूँ निरन्तर, प्यारे! केवल एक तुम्हारी राह।
बिगड़े-बने जगत् का कुछ भी, कहूँ निरन्तर प्यारे! वाह॥

(भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

अर्थात् हे प्रभु! यदि आपकी यह इच्छा है कि आप मेरी इच्छाको पूरी करें, तो आप अपनी जो भी इच्छा है, उसको पूरी कर लीजिये, बस मेरी यही इच्छा है। आपकी इच्छा पूरी हो, इसीमें मेरा कल्याण है। हे प्रभु! मैं मूर्ख और अनजान हूँ, इसलिये आप मेरी इच्छा पूरी मत करना।

हे प्रभु! आपकी इच्छा ही सदैव मेरी इच्छा हो। आपसे अलग मेरी कोई भी इच्छा न रहे और न मैं किसी (सांसारिक वस्तु-व्यक्ति)-की परवाह करूँ। मैं केवल आपकी इच्छाके अनुसार चलता रहूँ। जगत् बिगड़े चाहे बनें, मैं दोनों परिस्थितियोंमें अत्यन्त प्रसन्न रहूँ और यही कहूँ—'मेरे प्यारे—वाह, वाह प्यारे, वाह प्यारे।'

श्रीमद्भागवतमें भगवान्‌की वाणी है—

न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
मय्यर्पितात्मेच्छति मद् विनान्यत्॥

(११।१४।१४)

अर्थात् जिसने अपनेको मुझे सौंप दिया है, वह मुझे छोड़कर न तो ब्रह्माका पद चाहता है और न देवराज इन्द्रका, उसके मनमें न तो सार्वभौम सम्राट् बननेकी इच्छा होती है और न वह स्वर्गसे भी श्रेष्ठ रसातलका ही स्वामी होना चाहता है। वह योगकी बड़ी-बड़ी सिद्धियों और मोक्षतकको अभिलाषा नहीं करता।

धर्मः सत्यदयोपेतो विद्या वा तपसान्विता।
मद्भक्त्यापेतमात्मानं न सम्यक् प्रपुनाति हि॥

(११।१४।२२)

अर्थात् इसके विपरीत जो मेरी भक्तिसे वंचित है, उनके चित्तको सत्य और दयासे युक्त, धर्म और तपस्यासे युक्त विद्या भी भलीभाँति पवित्र करनेमें असमर्थ है।

अतः प्रेमी भक्त बन जाना ही इस जीवनकी सर्वोच्च सफलता एवं पूर्णता है।

श्रीरामकथाका एक पावन-प्रसंग—

प्रभो! आपको कैसे प्रसन्न करें ?

[श्रीराम-हनुमान्-संवाद]

(आचार्य श्रीरामरंगजी)

श्रीवसिष्ठाश्रमसे लौटकर श्रीराम राजभवन आ गये। उनके संकेतपर हनुमान् भी कनकभवनमें आ गये। जनकनन्दिनी जानकी भी उनके समीप आकर बैठ गयीं। आज श्रीरामके नेत्रोंसे प्रसन्नता फूटी पड़ रही थी। उन्हें अत्यन्त प्रहर्षित अनुभव करते हुए जानकी धीरेसे बोलीं, 'लगता है आज हमारे स्वामीको कुछ विशेष उपलब्धि—किसी भुवनके धनाध्यक्षकी नवनिधि ही प्राप्त हो गयी ?'

'वैदेहि! इससे भी अधिक, यह मानिये कि समस्त भुवनोंके धनाध्यक्षोंकी नवाधिक निधियोंसे भी अधिकाधिक ही प्राप्त करते हुए हम यहाँ आये हैं।'

'ऐसा क्या यदि…'

'हाँ, तुम भी सुनोगी तो यही कहोगी'

'तो सुनाइये न'

'आज हमें अपने मारुतिका, हमारे प्रति क्या भाव है, उससे हम परिचित हो गये।' कहते हुए श्रीरामने वसिष्ठाश्रमके प्रसंगका समस्त वर्णन कर डाला। सीता सुनकर बोलीं, 'हम कुछ-कुछ तो जानती थीं। शेष आपसे सुनकर कुछ और भी जान गयीं। किंतु आप क्षमा करें, जो आप बता रहे हैं, वह इन पवनात्मजको देखते हुए अपूर्ण ही है।'

जनकनन्दिनीके शब्द सुनकर श्रीराम उनकी ओर गम्भीरतापूर्वक देखते हुए बोले—

'प्राणवल्लभे! तुम सत्य कहती हो। मारुति क्या हैं, उन्हें त्रैलोक्यभरमें वस्तुतः कोई न जानता है और न ही जान सकता है। यदि कोई कहे कि 'मैं मारुतिको जानता हूँ तो उसे आत्मप्रवंचक (स्वयं ही स्वयंको छलनेवाला) कहनेके अतिरिक्त तो हमारे पास कोई अन्य शब्द नहीं है।'

श्रीराम अभी कुछ और भी कहते कि उससे पूर्व ही मारुति बोल उठे—'प्रभो! यह बताइये कि आपको कैसे प्रसन्न किया जाय ?'

'मारुति! यह तुम क्या प्रश्न कर रहे हो ? यह राम तुमसे स्वप्नमें भी अप्रसन्न नहीं हो सकता।'

'प्रभो! मैं यह मारुति, जो आपका दासानुदास है, केवल उसके विषयमें नहीं अपितु जीव-जगत्के प्रत्येक जीवके कल्याणके निमित्त ही यह प्रश्न कर रहा हूँ। महाराजा दशरथके पुत्र परब्रह्म परमेश्वरसे यह प्रश्न कर रहा हूँ।'

'समझे-समझे, ये पूजा-पाठ—अनेक पदार्थोंके समर्पण—तीर्थ-व्रतकी अपेक्षा 'मैं आपको प्रणाम करता हूँ' हमारी प्रसन्नताके लिये मुखसे इतना कहना ही पर्याप्त है।'

'किंतु स्वामिन्! यदि मुखमें कोई पदार्थ अथवा ताम्बूल हो तो ?'

'तो हमारा ध्यान करते हुए हाथ जोड़ दे।'

'हाथोंमें भी कुछ हो तो ?'

'मस्तक झुका दे।'

'मस्तकपर भी कुछ भार रखा हुआ हो तो ?'

'हनुमंत! हम समझ गये। तुम जगज्जीवोंके कल्याणके निमित्त आज एक कटिबद्ध योद्धाकी भूमिकामें उपस्थित हो। तो हम भी तुम्हें उत्तर-पर-उत्तर देनेके लिये प्रस्तुत हैं। अन्तिम उत्तर, बाह्य रूपसे यही है कि केवल पलकें झुकाकर प्रणाम कर ले। पलकोंसे प्रणाम करनेवालेका मैं जन्म-जन्मके लिये ऋणी हो जाता हूँ।' उसकी निरन्तर परिक्रमा करने लगता हूँ कि यह मुझसे कुछ तो कहे। ताकि मैं उसकी यथासम्भव पूर्ति करते हुए उससे ऋण-मुक्त हो सकूँ क्या, अपितु स्वयंको धन्यातिधन्य अनुभव कर सकूँ।

'जहाँतक अन्तरका सम्बन्ध है तो मुझसे अधिक तुम्हारा अन्तर इस तत्त्वको जानता है।'

मारुति जनकनन्दिनीकी ओर देखते हुए बोले, 'जगदम्बिके! इतने सहजमें प्रसन्न होनेवाले ठाकुरके स्थानपर जो कठिन तपस्याएँ कर-करके, किन्हीं-किन्हींसे दुर्लभातिदुर्लभ वर पाकर, अहमाश्रित होकर सर्वनाशका वरण करते हैं, उन्हें क्या कहा जाय ?'

डेंगू बुखारका आसान आयुर्वेदिक उपचार

(डॉ० श्रीदिलीपकुमारजी)

देशके विभिन्न प्रान्तोंके महानगरों एवं जनपदोंसे 'हड्डीतोड़ बुखार' डेंगूसे मरीजोंकी मौतकी सूचना लगातार प्राप्त हो रही है। वास्तवमें मादा 'एडीज' मच्छरोंके काटनेपर होनेवाले संक्रामक डेंगू बुखारमें मरीजके शरीरमें 'डेंगे' नामक रोगाणुओंका संक्रमण हो जाता है, जिससे संक्रमित व्यक्तिके शरीरमें 'प्लेटलेट्स'की संख्यामें बड़ी तेजीसे गिरावट आने लगती है।

चिकित्सा-वैज्ञानिकोंका मत है कि प्लेटलेट्स स्तनधारियोंके शरीरके खूनको पतला होनेसे रोकते हैं। इसकी कमी होनेपर मरीजके मुँह, नाक, पेशाब, मलद्वार और मसूढ़ोंसे रक्तस्राव होने लगता है। इसके साथ ही जब शरीरकी धमनियोंमें किसी प्रकारकी क्षति होती है तो सक्रिय होकर ये प्लेटलेट्स ही रक्तवाहिकाओंसे स्रावित होनेवाले 'कोलाजन' के साथ मिलकर थ्राम्बिन-प्रोथाम्बिनकी एक अस्थायी दीवार बना देते हैं। सामान्य बोल-चालकी भाषामें इसे ही खूनका थक्का कहते हैं। इस तरह ये रक्तवाहिकाओंमें होनेवाली क्षतिको रोक देते हैं।

आधुनिक खोजोंसे पता चला है कि शरीरकी सम्पूर्ण सुरक्षा-प्रणालीको तैयार करनेमें भी प्लेटलेट्सकी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। जर्मनीके म्यूनिख विश्वविद्यालयके शोधकर्तादलने अपने शोध परिणामके आधारपर बताया है कि ये शरीरमें प्रवेश करनेवाले बैक्टीरियाको अपनेमें खींच लेते हैं और उन्हें लेकर तिल्लीमें चले जाते हैं, जहाँ 'भक्षण कोशिकाओं' द्वारा उन्हें खत्म कर दिया जाता है।

डेंगू, मलेरिया, वायरल बुखार और मस्तिष्क ज्वरसे शरीरमें प्लेटलेट्सके स्तरमें तेजीसे गिरावट आने लगती है। अतः डेंगूसहित इस प्रकारके अन्य संक्रामक बुखारवाले मरीजके रक्तमें प्लेटलेट्सकी सुरक्षा एवं वृद्धि उपचारका एक अनिवार्य पक्ष है। आधुनिक चिकित्सा एलोपैथीमें प्लेटलेट्स बढ़ानेका एकमात्र उपाय रक्तमें अलगसे प्लेटलेट्सका चढ़ाया जाना ही है, जो खर्चीला और जटिल चिकित्सकीय कार्य है। इसके अलावा प्लेटलेट्स आसानीसे मिलता भी नहीं; क्योंकि यह बहुत कम समयतक ही टिका रहता है। प्लेटलेट्सकी इस समस्याका हल आयुर्वेदमें अत्यन्त आसान और सरल है।

भारतीय उपमहाद्वीपके सभी भागोंमें आसानीसे उगनेवाली वनस्पतियोंसे आयुर्वेदिक चिकित्सक डेंगू-जैसे संक्रामक बुखारकी मुख्य समस्या रोगीके रक्तमें प्लेटलेट्सकी गिरावटको सफलतापूर्वक नियन्त्रितकर उपचार करनेमें सफल हुए हैं। आयुर्वेदिक चिकित्सकोंने वनौषधियोंके काढ़े-स्वरस तथा इनसे बनी गोलियोंका प्रयोगकर अनेक डेंगू मरीजोंकी प्राणरक्षा करनेमें सफलता पायी है।

आयुर्वेदिक चिकित्सकोंने डेंगू बुखारकी जटिल एवं व्ययसाध्य उपचार-व्यवस्थासे निजात दिलाते हुए डेंगूके इलाजका जो आसान, सस्ता और अत्यन्त कारगर चिकित्सा-विकल्प प्रदान किया है, वह इस प्रकार है—डेंगूके मरीजका आयुर्वेदिक चिकित्सक अमृता (गिलोय), घृतकुमारी, पपीतेकी पत्ती और कालमेघ-जैसी जड़ी-बूटियोंसे अत्यन्त सफलतापूर्वक उपचार कर रहे हैं। इसके उपचारार्थ ताजे गिलोयकी डण्डी, पपीतेकी पत्ती और कालमेघके पत्तोंसे बना काढ़ा और घृतकुमारीका रस या गूदा दिनमें चार बार देना चाहिये। ये चारों औषधीय वनस्पतियाँ सर्वत्र आसानीसे मिल जाती हैं। इनमेंसे गिलोय तथा कालमेघकी गोलियाँ और घृतकुमारीका तैयार रस भी बाजारमें आसानीसे पर्याप्त मात्रामें मिल जाता है और पपीतेकी प्राप्ति भी अत्यन्त सुगम है। उपर्युक्त औषधियोंको डेंगूके मरीजको देनेके अलावा उसे कम-से-कम चार-छः लीटर पानी दिनभरमें देना जरूरी रहता है। पानी उबालकर किसी बर्तनमें एक साथ रख लेना चाहिये और उसे मरीजको थोड़े-थोड़े अन्तरालपर देते रहना चाहिये। इस जलमें थोड़ी मात्रामें ग्लूकोज मिलानेसे रोगीको अतिरिक्त शक्ति मिलती है। डेंगूके रोगीको सुपाच्य और ताजा भोजन दिया जाना चाहिये। मरीजको आसानीसे हजम होनेवाले फल और पोषक तत्त्व भी देना चाहिये। पपीतेके फलकी सब्जी, उबला पपीता, पपीतेका पका फल इस बीमारीमें विशेष उपयोगी है। डेंगूके ज्वरसे मुक्ति पा लेनेके बाद लीवरपर पड़े इसके प्रभावके निराकरणके लिये तीन माहतक कालमेघ लेते रहना चाहिये तथा पपीतेके फलका नियमित सेवन करना चाहिये। मिर्च-मसाले, चिकनी चीजें और तेल, घी कम-से-कम लेना चाहिये। इससे रोगीका लीवर स्वस्थ हो जाता है।

संत-चरित—

रामदास काठियाबाबा

(श्रीरामलालजी)

रामदास काठियाबाबाके स्मरणमात्रसे एक ऐसे संतका चित्र अपने सम्मुख अभिव्यक्त हो उठता है, जिनकी सघन भूरी-भूरी जटाएँ हैं, शरीर अम्बरहीन तथा भस्मलेपसे विभूषित है, वक्ष:स्थलतक लम्बी दाढ़ी फहरा रही है और कमरमें जंजीरसे बँधी हुई काठकी लंगोटी तथा हाथमें विशाल कमण्डलु शोभा पा रहा है। काठियाबाबा साधना, तपस्या, संयम-नियम, वैराग्य और जीवमात्रके प्रति दयाकी तो मानो साक्षात् मूर्ति ही थे। वे एक सच्चे संन्यासी थे। उनका जीवन संतोंके प्रति असाधारण अनुराग और सेवाका अद्भुत सम्मिश्रण था। वे विक्रमीय सम्वत् १९१४ (सन् १८५७ ई०)-के प्रथम स्वाधीनता-संग्रामके समय उपस्थित थे। उस समय भी उनकी अवस्थाका अनुमान लगाना कठिन था।

पंजाब प्रदेशके अमृतसर जनपदमें लोनाचमारी ग्रामके सन्निकट एक ग्राममें रामदास काठियाबाबाने सम्वत् १८०३ वि० के लगभग जन्म लिया था। उनके पिता बड़े सदाचारी और भगवन्निष्ठ ब्राह्मण थे। उनका स्वभाव अत्यन्त धार्मिक था।

उस गाँवमें एक परमहंसजी रहते थे। वे एक पेड़के नीचे बैठकर भगवान्का भजन करते थे। काठियाबाबा उस समय केवल चार वर्षके थे। वे खेलते-खेलते परमहंसजीके पास पहुँच गये। परमहंसजीने बड़े ध्यानसे उनकी ओर देखकर कहा—'राम-नामका जप करो। रामका नाम लेनेसे मनुष्य बड़ा बनता है। राम-नामसे सुख और शान्तिकी प्राप्ति होती है।' परमहंसजीके कथनका चार वर्षके बालकपर अमिट प्रभाव पड़ा। वे उनके कथनके अनुसार एकान्तमें बैठकर नित्य रामनामका जप करने लगे।

माता-पिताको संतानकी भक्तिमयी रुचिपर बड़ा संतोष हुआ। इनमें बचपनसे ही साधु-संतोंके प्रति अनुरागका भाव जाग्रत् होने लगा। सात वर्षकी अवस्थातक वे भैंस चराया करते थे। तबतक उनका उपनयन-संस्कार नहीं हुआ था।

एक दिन भैंस चराते समय उन्हें एक महात्माके दर्शन हुए। महात्मा बहुत भूखे थे। उन्होंने काठियाबाबासे कुछ खानेके लिये माँगा। वे दौड़कर घर गये और आटा, घी आदि लाकर उन महात्माजीकी सेवामें अर्पित कर दिया। महात्माने उन्हें आशीर्वाद दिया कि 'एक दिन तुम बहुत बड़े योगी होओगे और जीवमात्रको सन्मार्गपर लगाओगे।'

उपनयन-संस्कार हो जानेपर पिताने उनको ग्रामसे थोड़ी ही दूरपर एक विद्यालयमें अध्ययन करनेके लिये भेजा। काठियाबाबा अध्ययनकालमें भी राम-नामकी जप-संख्या बढ़ाते गये। उनमें वैराग्यका उदय होने लगा। अठारह वर्षकी अवस्थामें शिक्षा पूरी करके घर लौटनेपर माता-पिताने उनके विवाहका विचार किया। काठियाबाबाने विनम्रता और सरलतापूर्वक उनसे प्रार्थना की कि 'वैवाहिक जीवनमें मेरा मन तनिक भी नहीं लगेगा; क्योंकि मुझे राम-नामके जपमें जो रस मिलता है, उसकी प्राप्ति भोगोंमें कभी भी सम्भव नहीं है।' विवाहका प्रस्ताव टल गया। काठियाबाबाका अधिकांश

समय साधन-भजनमें बीतने लगा, इससे उनकी संसारके प्रति रही-सही आसक्ति भी मिट गयी।

काठियाबाबाकी गायत्री-मन्त्रमें बड़ी श्रद्धा थी। उन्होंने गायत्री-मन्त्रका जप आरम्भ किया। उनकी श्रद्धा और भक्तिके प्रसन्न तथा सन्तुष्ट होकर गायत्री-माताने उनको साक्षात् दर्शन दिया। माँ गायत्रीने उनको ज्वालामुखी जाकर पचीस हजार मन्त्रोंके जपका आदेश दिया। वे तुरंत ज्वालामुखीके लिये चल पड़े। ज्वालामुखीके मार्गमें एक बड़े सिद्ध महात्मासे उनकी भेंट हुई। वे निम्बार्क-सम्प्रदायके संत देवदास थे। उन्होंने काठियाबाबापर कृपा करके संन्यासाश्रममें दीक्षित कर लिया। वे वैराग्यपूर्वक अपने गुरुके पास रहकर भजन करने लगे। इस समाचारसे उनके माता-पिता बहुत क्षुब्ध हुए। पिताने संत देवदासके चरणोंमें निवेदन किया कि 'यह बालक मेरी पत्नीके प्राणोंका आधार है, अतः इसको आप घरपर ही रहकर भजन करनेका आदेश दे दीजिये।'

गुरुकी आज्ञासे काठियाबाबा घरपर ही रहकर तप और साधना करने लगे; पर माताकी ममता और वात्सल्यमयी विकलता साधनामें विघ्न सिद्ध हुई। तब वे घरसे थोड़ी दूरपर एक वट-वृक्षके नीचे रहकर भजन करने लगे। वे भिक्षा माँगकर जीवन-निर्वाह करते हुए भगवान्की भक्तिमें लगे रहते थे। एक दिन सहसा वे अपने घरपर पहुँच गये और दरवाजेपर खड़े होकर उन्होंने भिक्षाके लिये आवाज लगायी। भिक्षा लेकर बाहर आते ही माताने पुत्रको साधुवेशमें देखा तो उनके नयनोंसे अश्रु-धारा प्रवाहित हो उठी और कण्ठ अवरुद्ध हो गया। किसी तरह मातासे भिक्षा लेकर रामदास काठियाबाबा वट-वृक्षके नीचे आये। उसी दिन उन्होंने गाँव छोड़ देनेका दृढ़ निश्चय कर लिया।

संन्यस्त जीवनमें सबसे बड़ा विघ्न कामिनी और कंचनसे होता है, इसलिये संत-महात्मा इन दोनोंकी ओर कभी आँख उठाकर नहीं देखते। निःसन्देह ये दोनों पतनकी ओर ले जानेवाले हैं। वट-वृक्षके नीचे एक युवती कुल-वधू कभी-कभी अकेली उनका दर्शन करने आया करती थी। महाराजने उसे आनेसे मना किया, पर वह किसी भी तरह न मानती थी। अचानक ही महाराज गाँवसे चले गये और फिर कभी वहाँ न आये। वे संयम-नियमके बड़े कट्टर थे। वे कहा करते थे—'भगवान् सदा छायाकी तरह साथ रहकर अपने भक्तोंकी रक्षा करते हैं।'

वे पुनः अपने गुरुदेवके सन्निकट गये और उन्हींकी शरणमें रहकर तप करने लगे। वे इस बातपर दृढ़ विश्वास करते थे कि सद्गुरुकी कृपासे मुक्ति अवश्य ही प्राप्त हो सकती है। वे अपने गुरुके चरणदेशमें अप्रतिम श्रद्धा रखते थे। एक बार उनके गुरुदेव उत्तराखण्डमें तप कर रहे थे। वे कुटीके भीतर थे और काठियाबाबा बाहर धूनी ताप रहे थे। रातमें बर्फ गिरनेसे धूनीकी आग ठण्डी हो गयी। काठियाबाबाने कुटीके भीतर जाकर गुरुके तप, मानसिक शान्ति तथा एकान्त साधनामें विघ्न नहीं उपस्थित करना चाहा, वे कुटीके सामने ही पड़े रहे। रातकी नीरवता और भयानक शीतकालमें भी वे विचलित न हुए। उनका शरीर ठण्डकसे काँप रहा था। जब गुरुदेव बाहर आये तो उनकी निष्ठा देखकर बहुत प्रसन्न हुए। तत्पश्चात् वे धूनी जलानेके लिये अन्दरसे आग लेकर सहज शान्तिकी मुद्रामें पुनः अपने स्थानपर आकर पूर्ववत् भजनमें तत्पर हो गये।

एक दिन गुरुदेवने आदेश दिया कि 'मैं एक स्थानपर जा रहा हूँ। मैं जबतक लौट न आऊँ, तुम इसी आसनपर बैठे रहना, कहीं अन्यत्र मत जाना।' दैवयोगसे महात्मा देवदास आठ दिनके बाद लौट सके। काठियाबाबाको उसी आसनपर अडिग देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए और बोले—'तुम्हें इस निष्ठाके फलस्वरूप किसी-न-किसी दिन इसी जीवनमें भगवान्का साक्षात्कार प्राप्त होगा।'

वे अपने गुरुके आदेशसे द्वारका गये। द्वारकासे

लौटनेपर अपने गुरुदेवको न पाकर वे बहुत चिन्तित हुए। वे गुरुको साक्षात् भगवान् समझते थे। उन्होंने गुरु-भाइयोंसे कहा कि 'गुरु महाराज तो सर्वशक्तिमान् हैं, उनकी मृत्यु नहीं हो सकती।' उनके वचनकी रक्षा करते हुए गुरुदेवने एक दिन उनको प्रत्यक्ष दर्शन देकर कहा कि 'मैंने चोला (शरीर) नहीं छोड़ा है, आत्मगोपन किया है। मैं नर्मदाके तटपर किसी विशेष कारणसे निवासकर तप कर रहा हूँ। समय-समयपर तुम्हें दर्शन देता रहूँगा।'

गुरु साक्षात् ज्ञान-विग्रह हैं। रामदास काठियाबाबा गुरु-कृपाके विशेष पात्र थे। वे प्राय: कहा करते थे कि 'आलस्य छोड़कर भगवान्की भक्ति और साधु-सन्तोंकी सेवा करनी चाहिये। गृहस्थ और संन्यासी—दोनों समान रूपसे भगवत्प्राप्तिके अधिकारी हैं।' उन्होंने गुरुके अन्तर्धान होनेके बाद समस्त भारतके तीर्थोंकी अनेक बार पैदल यात्रा की। गुरुदेवके आशीर्वादके फलस्वरूप उन्हें भरतपुर राज्यके सैलानी-कुण्डपर भगवान्का साक्षात् दर्शन हुआ। काठियाबाबाकी इस सम्बन्धमें स्वीकृति है—

'रामदासको राम मिले हैं, सैलानीके कुंडा।'

संतकी पहचान सूक्ष्म बुद्धिसे भी नहीं होती, यह तो उनकी प्रसन्नता और कृपासे ही सम्भव है।

सम्वत् १९१४ वि० की बात है। भारतीय स्वाधीनताके प्रथम संग्रामका समय था। काठियाबाबा यमुनाके तटपर विचरण करते हुए आगरा जा रहे थे। गोरे सिपाहियोंने समझा कि कोई विद्रोही वेष बदलकर भाग रहा है। उन्होंने दो बार गोली चलायी, किंतु महाराज बच गये। तीसरी बार गोली चलाते समय बन्दूक हाथसे नीचे गिर पड़ी। तब सिपाहियोंने उनकी महत्ता समझी और चरण-धूलि ली। महाराज अपने विचरणमें मस्त थे। इस घटनाका उनके मनपर कुछ भी प्रभाव न पड़ा।

एक बार उन्होंने पंचाग्नि तापनेकी इच्छा प्रकट की। एक साधुने ईर्ष्यावश उनके चारों ओर हजार कण्डे जला दिये। लोग घबरा गये कि न जाने इस पंचाग्निका क्या परिणाम होगा! काठियाबाबा पंचाग्नि-तपकी इस कठिन परीक्षामें भी अविचल रहे। उनका बाल भी बाँका न हो सका।

काठियाबाबाका जीवन तपस्या-प्रधान था। वे कहा करते थे—'रातके चौथे प्रहरसे ही निद्राका परित्यागकर भगवान्का भजन करना चाहिये। निन्दा और स्तुतिसे परे रहकर सत्कर्ममें लगे रहना चाहिये।' गुरुकी शरणागतिपर काठियाबाबा बड़ा जोर देते थे। कहा करते थे कि 'गुरुके चरणाश्रयसे अन्त:करण शुद्ध होता है, माया और अविद्याके अन्धकारका नाश और भगवत्प्रकाशका उदय होता है।' सद्गुरुकी कृपामें विश्वास ही उनकी साधनाका स्वरूप था। तपको उन्होंने साधनाके क्षेत्रमें बड़ा महत्त्व दिया है। यह उनका दृढ़ सिद्धान्त था कि भगवान्का भजन ही जीवनका श्रेय है।

भरतपुरके सैलानी-कुण्डपर कुछ दिनोंतक तप करनेके बाद वे वृन्दावनमें निवासकर भगवान्का भजन करने लगे। साधु-महात्माओंकी सेवामें उनको बड़ा रस मिलता था। अत: वे दावानल-कुण्डपर रहकर तपोमयी साधनामें लग गये। नित्य जंगलसे तीन-चार मन लकड़ी काट लाते थे और उसका बड़ी नि:स्पृहतासे सन्तोंकी सेवामें उपयोग करते थे। वे यमुनाके तटपर एकान्त स्थानमें आसन लगाकर भजन करनेमें परमानन्दका अनुभव करते थे। बंगालके प्रसिद्ध महात्मा विजयकृष्ण गोस्वामी अपने वृन्दावन-निवास-कालमें कभी-कभी इनके सत्संग और दर्शनके लिये आते रहते थे। वृन्दावनके संत-महात्माओंमें काठियाबाबा 'व्रजविदेही' नामसे प्रसिद्ध थे। सम्वत् १९२० वि० में यमुनाके तटपर वे योगासनसे समाधिस्थ हो गये।

साधनोपयोगी पत्र

(१)

अपने दोषोंपर विचार करो

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। आपने अपने दु:खके जो कारण लिखे, वे तो बाहरी हैं। असली कारण तो आपका अपना उच्छृंखल मन ही है। जो मनुष्य दूसरोंके प्रति मनमें बुरे भावोंका पोषण करता है, उसको दूसरोंसे बुरे भाव—प्रतिहिंसा, वैर आदि मिलनेका भय लगा ही रहता है। वह आप ही अपने लिये दु:खोंको बुलाता है। इतना ही नहीं, वह जगत्में भी दु:ख ही फैलाता है। जिसके अन्दर जैसे विचार या भाव होते हैं, उसके वचनोंसे, आकृतिसे, भावभंगीसे वही विचार प्रतिक्षण बाहर निकलते रहते हैं। उसके रोम-रोमसे स्वाभाविक ही वैसे ही परमाणु प्रकट हो-होकर दूर-दूरतक फैलते हैं और न्यूनाधिकरूपसे सबपर अपना प्रभाव डालते हैं। सजातीय विचारवालोंपर अधिक और विजातीय विचारवालोंपर कम। जैसे प्लेग, चेचक और हैजे आदि रोगोंके कीटाणु सर्वत्र फैलकर रोग फैला देते हैं, वैसे ही मनुष्यके अन्दर रहनेवाले घृणा, द्वेष, भय, वैर, शोक, विषाद, चिन्ता, क्रोध, काम, लोभ, डाह आदि मानसिक रोगोंके परमाणु भी सर्वत्र फैलकर लोगोंको रोगी बनाते हैं। आपके घरमें जो कलह है, इसमें केवल दूसरे पक्षका ही दोष हो, ऐसी बात नहीं माननी चाहिये और वस्तुत: ऐसा है भी नहीं, उसमें आपका भी दोष है और वही कलह फैलाकर आपको और घरके दूसरे लोगोंको दुखी बना रहा है। भगवान्ने गीतामें कहा है—

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मन:॥
बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जित:।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्॥

(६।५-६)

'आप ही अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है। जिसके द्वारा मन, वाणी आदि जीते हुए हैं, वह तो आप ही अपना मित्र है और जिसके द्वारा नहीं जीते हुए हैं, उसने आप ही अपने साथ शत्रुकी तरह वैर ठान रखा है।'

जैसा अभ्यास होता है, मन वैसा ही बन जाता है। दोषदर्शनका अभ्यास हो जानेपर बिना ही हुए लोगोंमें दोष दीखने लगते हैं, इसलिये यह तो कठिन है कि इस पत्रके पढ़ते ही आपको दूसरोंके दोष दीखने बन्द हो जायँ। ऐसा हो जाय तो बड़े ही आनन्दकी बात है, परंतु आशा कम है। अतएव आप शान्ति और धीरजके साथ अपने दोषोंको भी खोजने और देखनेका प्रयत्न कीजिये। जहाँ अपने दोष दीखने लगेंगे, वहीं दूसरोंके दोष दीखने कम होने लगेंगे। फिर आगे चलकर यह दशा हो जायगी—

बुरा जो देखन मैं गया बुरा न दीखा कोय।
जो तन देखा आपना मुझ-सा बुरा न कोय॥

और जब दूसरोंके दोषकी बात याद ही न रहेगी और सब तरहसे अपने ही दोष—अपराध प्रत्यक्ष सामने रहेंगे, तब तो स्वाभाविक ही अपने दोषोंके लिये पश्चात्ताप होगा और नम्रतापूर्वक सबसे क्षमा चाहनेकी प्रवृत्ति बलवती हो उठेगी। चैतन्य महाप्रभुसे दया पाये हुए जगाई-मधाईका अन्तिम जीवन रो-रोकर सबसे क्षमा चाहनेमें ही बीता था। वे पश्चात्ताप और करुणाकी मूर्ति ही बन गये थे।

आपसे प्रेम है और आप मेरे कहनेको बुरा न मानकर उसे अच्छी दृष्टिसे देखेंगे तथा विचार करेंगे, यही समझकर आपको इतना लिखनेका साहस किया गया है। शेष प्रभुकृपा।

(२)

सर्वत्र सबमें भगवान्‌को देखो

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपके कई पत्र मिल चुके। मेरा स्वाभाविक आलस्य आप जानते ही हैं। इसके सिवा इधर कामकी भी कुछ भीड़ रही। सर्वत्र सबमें भगवान्‌को देखनेका प्रयत्न करना और यथासाध्य

अधिकाधिक भगवान्‌का स्मरण करना एवं स्मरण होनेपर न भूलनेकी चेष्टा करना—ये बड़े ही उत्तम साधन हैं। सर्वत्र सबमें परमात्माको देखनेके साधनसे बहुत ही शीघ्र जीवन पलट सकता है। पाप, ताप, छल, द्रोह, दम्भ, वैर आदिका आप ही नाश हो जाता है। जो सामने आया, तत्काल उसीमें भगवान् हैं, ऐसा स्मरण हो आनेसे उसके साथ दूषित बर्ताव हो ही नहीं सकता। नाटकमें नाटकका स्वामी या अपना साक्षात् पिता भी शिष्य बनकर आ सकता है। उसको स्वामी या पिता पहचानते हुए जो शिक्षकका नाट्य किया जाता है, वह स्वामीके आज्ञानुसार लीलावत् ही होता है। उसमें दोष प्राय: आ ही नहीं सकता। इसी प्रकार आप भी विद्यार्थियोंको पढ़ाते समय 'उनमें भगवान् हैं या स्वयं भगवान् ही उन स्वरूपोंमें प्रकट हो रहे हैं', ऐसा समझकर उन्हें पढ़ाइये। यही व्यवहार घरके लोगों, मित्रों, सम्बन्धियों, नौकरों आदिके साथ कीजिये तो बहुत ही शीघ्र समस्त दोषोंका ध्वंस सम्भव है। चित्तमें अपूर्व शान्ति और आनन्द तो इस साधनके संगी ही हैं। **'वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः।'** दूसरोंके साथ बुरा बर्ताव, विषम व्यवहार तभीतक होता है, जबतक हम उन्हें आत्मासे अतिरिक्त कोई दूसरा समझते हैं। जब हम यह देखेंगे कि ये सब तो हमारे आत्मा ही हैं, तब बुरा बर्ताव कैसे होगा? अपने प्रति क्या कभी कोई बुरा बर्ताव करता है? फिर, जब वे हमें भगवान् दीखेंगे, तब तो हमारे पूज्य और सब प्रकारसे सेवाके पात्र बन जायँगे। शेष प्रभुकृपा।

(३)

पतित होकर पतितपावनको पुकारे!

भाई! तुम इतना घबड़ाते क्यों हो? परमात्माकी असीम दयालुतापर विश्वास करो। हम पतित हैं तो क्या हुआ, वे तो 'पतितपावन' हैं। सचमुच पतित बनकर पतितपावनको पुकारो—अशरण होकर अशरणशरणकी शरण हो जाओ। फिर देखो—करोड़ों स्नेहमयी जननी-हृदयोंको भी लजा देनेवाला परमात्माका स्नेह-स्रोत उमड़ता दिखलायी देगा और तुम उसके प्रवाहमें आनन्दरूप होकर बह जाओगे। हालत खराब है तो क्या है? लाख वर्षकी अँधेरी कोठरी प्रकाश आते ही प्रकाशित हो जाती है। वह लाख वर्षकी अपेक्षा नहीं करती। इसी प्रकार भगवान्‌के शरण होते ही सारे पाप तुरंत भस्म हो जाते हैं। मनमें दृढ़ता धारणकर भगवान्‌का स्मरण करो और अपनेको सर्वतोभावसे उनके चरणोंपर न्योछावर कर देनेकी चेष्टा करो। उनकी दयालुतापर विश्वास करो और यह दृढ़ धारणा कर लो कि 'मैं उनका हूँ, उनका अभय हस्त मेरे मस्तकपर सदा ही टिका हुआ है।' यह भावना जितनी ही बढ़ेगी, उतना ही आनन्द बढ़ेगा। नाम-जपमें मन ऊबता है तो जबरदस्ती कड़वी दवाकी भाँति ही उसका नियमपूर्वक सेवन करो। भगवान्‌के बलपर मनमें धीरज रखो। आचरणोंको उज्ज्वल बनानेकी कोशिश करो। शेष प्रभुकृपा।

(४)

प्रार्थना भगवान् अवश्य सुनते हैं

प्रिय महोदय, सप्रेम हरिस्मरण! आपका एक पत्र गोरखपुर कार्यालयसे प्राप्त हुआ, जिसमें आपने प्रतिकूल समस्याओंकी चर्चा की। अपने पूर्वजन्मोंमें स्वयं अपने द्वारा किये गये कर्मोंके अनुसार जीवनमें अनुकूलता तथा प्रतिकूलता आती है। प्रतिकूलता अपने द्वारा किये गये पापका फल है; इसलिये इसे परिस्थितिवश सहन करना पड़ता है। यद्यपि इसके निराकरणके लिये अपनी विवेक-बुद्धिके अनुसार प्रयास करना चाहिये, परंतु इसका अन्तिम समाधान यह है कि इससे उबरनेके लिये बिना विचलित हुए परमात्मप्रभुसे प्रार्थना की जाय। इसी उद्देश्यसे निरन्तर भगवान्‌के नामका जप तथा एकान्तमें प्रभुसे आर्तभावसे प्रार्थना करनी चाहिये। प्रार्थना भगवान् अवश्य सुनते हैं। मनकी शान्तिके लिये गीताप्रेसद्वारा प्रकाशित सत्साहित्यका अध्ययन अत्यन्त कल्याणकारी है। शेष प्रभुकृपा।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७३, शक १९३८, सन् २०१७, सूर्य दक्षिणायन-उत्तरायण, हेमन्त-शिशिर-ऋतु, माघ कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें ३। ५४ बजेतक	शुक्र	पुष्य रात्रिमें १। ३३ बजेतक	१३ जनवरी	**मूल** रात्रिमें १। ३३ बजेसे।
द्वितीया " २। ४३ बजेतक	शनि	आश्लेषा " १। १० बजेतक	१४ "	**भद्रा** रात्रिमें २। २१ बजेसे, **सिंहराशि** रात्रिमें १। १० बजेसे, **मकरसंक्रान्ति** दिनमें १। ४८ बजे, **खिचड़ी, खरमास समाप्त, शिशिर-ऋतु प्रारम्भ, सूर्य उत्तरायण।**
तृतीया " १। ५८ बजेतक	रवि	मघा " १। १४ बजेतक	१५ "	**भद्रा** दिनमें १। ५८ बजेतक, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ८। ३२ बजे, **मूल** रात्रिमें १। १४ बजेतक।
चतुर्थी " १। ४३ बजेतक	सोम	पू० फा० " १। ४९ बजेतक	१६ "	× × × ×
पंचमी " १। ५८ बजेतक	मंगल	उ० फा० " २। ५४ बजेतक	१७ "	**कन्याराशि** दिनमें ८। ५ बजेसे।
षष्ठी " २। ४७ बजेतक	बुध	हस्त " ४। २७ बजेतक	१८ "	**भद्रा** दिनमें २। ४७ बजेसे रात्रिमें ३। २५ बजेतक।
सप्तमी सायं ४। १ बजेतक	गुरु	चित्रा रात्रिशेष ६। २८ बजेतक	१९ "	**तुलाराशि** सायं ५। २८ बजेसे, **श्रीरामानन्दाचार्य-जयन्ती।**
अष्टमी " ५। ४२ बजेतक	शुक्र	स्वाती अहोरात्र	२० "	**सायन कुंभराशिका सूर्य** दिनमें ८। ४८ बजे।
नवमी रात्रिमें ७। ४२ बजेतक	शनि	स्वाती दिनमें ८। ४८ बजेतक	२१ "	**वृश्चिकराशि** रात्रिमें ४। ४४ बजेसे।
दशमी " ९। ५१ बजेतक	रवि	विशाखा " ११। २१ बजेतक	२२ "	**भद्रा** दिनमें ८। ४६ बजेसे रात्रिमें ९। ५१ बजेतक।
एकादशी " १२। ० बजेतक	सोम	अनुराधा " १। ५९ बजेतक	२३ "	**षष्ट्‌तिला एकादशीव्रत (सबका), मूल** दिनमें १। ५९ बजेसे।
द्वादशी " १। ५७ बजेतक	मंगल	ज्येष्ठा सायं ४। २९ बजेतक	२४ "	**धनुराशि** सायं ४। २९ बजेसे, **श्रवणका सूर्य** दिनमें ८। ४४ बजे।
त्रयोदशी " ३। ३७ बजेतक	बुध	मूल रात्रिमें ६। ४४ बजेतक	२५ "	**भद्रा** रात्रिमें ३। ३७ बजेसे, **प्रदोषव्रत, मूल** रात्रिमें ६। ४४ बजेतक।
चतुर्दशी रात्रिशेष ४। ४८ बजेतक	गुरु	पू० षा० " ८। ३५ बजेतक	२६ "	**भद्रा** सायं ४। १२ बजेतक, **मकरराशि** रात्रिमें २। ५७ बजेतक, **गणतन्त्र-दिवस।**
अमावस्या " ५। ३२ बजेतक	शुक्र	उ० षा० " १०। ० बजेतक	२७ "	**मौनी अमावस्या।**

सं० २०७३, शक १९३८, सन् २०१७, सूर्य उत्तरायण, शिशिर-ऋतु, माघ शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिशेष ५। ४६ बजेतक	शनि	श्रवण रात्रिमें १०। ५६ बजेतक	२८ जनवरी	× × × ×
द्वितीया " ५। २७ बजेतक	रवि	धनिष्ठा " ११। २० बजेतक	२९ "	**कुम्भराशि** दिनमें ११। ८ बजेसे, **पंचकारम्भ** दिनमें ११। ८ बजे।
तृतीया रात्रिमें ४। ३९ बजेतक	सोम	शतभिषा " ११। १६ बजेतक	३० "	× × × ×
चतुर्थी " ३। २५ बजेतक	मंगल	पू० भा० " १०। ४५ बजेतक	३१ "	**भद्रा** सायं ४। २ बजेसे रात्रिमें ३। २५ बजेतक, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत। मीनराशि** सायं ४। ५२ बजेसे।
पंचमी " १। ५१ बजेतक	बुध	उ० भा० " ९। ५४ बजेतक	१ फरवरी	**वसन्तपंचमी, मूल** रात्रिमें ९। ५४ बजेसे।
षष्ठी " ११। ५५ बजेतक	गुरु	रेवती " ८। ४२ बजेतक	२ "	**मेषराशि** रात्रिमें ८। ४२ बजेसे, **पंचक समाप्त** रात्रिमें ८। ४२ बजे।
सप्तमी " ९। ४६ बजेतक	शुक्र	अश्विनी " ७। १६ बजेतक	३ "	**मूल** रात्रि ७। १६ बजेतक, **भद्रा** रात्रि ९। ४६ से, **रथसप्तमी, अचलासप्तमी।**
अष्टमी " ७। २९ बजेतक	शनि	भरणी सायं ५। ४१ बजेतक	४ "	**भद्रा** दिनमें ८। ३७ बजेतक, **वृषराशि** रात्रिमें ११। १६ बजेसे।
नवमी सायं ५। ७ बजेतक	रवि	कृत्तिका " ४। ० बजेतक	५ "	**महानन्दानवमी।**
दशमी दिनमें २। ४५ बजेतक	सोम	रोहिणी दिनमें २। २१ बजेतक	६ "	**भद्रा** रात्रिमें १। ३८ बजेसे, **मिथुनराशि** रात्रिमें १। ३४ बजेसे, **धनिष्ठाका सूर्य** दिनमें १०। ५६ बजे।
एकादशी " १२। २९ बजेतक	मंगल	मृगशिरा " १२। ४६ बजेतक	७ "	**भद्रा** दिनमें १२। २९ बजेतक, **जया एकादशीव्रत (सबका)।**
द्वादशी " १०। २२ बजेतक	बुध	आर्द्रा " ११। २० बजेतक	८ "	**कर्कराशि** रात्रिमें ४। २८ बजेसे, **प्रदोष्रवत।**
त्रयोदशी " ८। ३१ बजेतक	गुरु	पुनर्वसु " १०। ११ बजेतक	९ "	× × × ×
चतुर्दशी प्रातः ६। ५९ बजेतक पूर्णिमा रात्रिशेष ५। ५० बजेतक	शुक्र	पुष्य " ९। २२ बजेतक	१० "	**भद्रा** प्रातः ६। ५९ बजेसे रात्रिमें ६। २४ बजेतक, **मूल** दिनमें ९। २२ बजेसे, **माघी पूर्णिमा, माघ स्नान समाप्त।**

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७३, शक १९३८, सन् २०१७, सूर्य उत्तरायण, शिशिर-ऋतु, फाल्गुन कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिशेष ५।७ बजेतक	शनि	आश्लेषा दिनमें ८।५३ बजेतक	११ फरवरी	**सिंहराशि** दिनमें ८। ५३ बजेसे।
द्वितीया ,, ४।५३ बजेतक	रवि	मघा ,, ८।५२ बजेतक	१२ ,,	**कुंभ-संक्रान्ति** रात्रिमें १२। ३२ बजे, **मूल** दिनमें ८। ५२ बजेतक।
तृतीया ,, ५। १० बजेतक	सोम	पू० फा० ,, ९।१८ बजेतक	१३ ,,	**भद्रा** सायं ५। १ बजेसे रात्रिशेष ५। १० बजेतक, **कन्याराशि** दिनमें ३। ३३ बजेसे।
चतुर्थी ,, ६। १ बजेतक	मंगल	उ० फा० ,, १०।१७ बजेतक	१४ ,,	**संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत,** चन्द्रोदय रात्रिमें ९। २ बजे।
पंचमी अहोरात्र	बुध	हस्त ,, ११।४६ बजेतक	१५ ,,	**तुलाराशि** रात्रिमें १२। ४३ बजेसे।
पंचमी प्रातः ७।१७ बजेतक	गुरु	चित्रा ,, १।४० बजेतक	१६ ,,	रवियोग दिनमें १। ४० बजेसे।
षष्ठी दिनमें ८।५९ बजेतक	शुक्र	स्वाती ,, ३।५६ बजेतक	१७ ,,	**भद्रा** दिनमें ८।५९ बजेसे रात्रिमें ९।५८ बजेतक, रवियोग दिनमें ३।५६ बजेतक।
सप्तमी ,, १०।५८ बजेतक	शनि	विशाखा रात्रि ६।२८ बजेतक	१८ ,,	**वृश्चिकराशि** दिनमें ११।५० बजेसे, सायन **मीनराशि** का सूर्य रात्रिमें ८।४९ बजे।
अष्टमी ,, १।६ बजेतक	रवि	अनुराधा ,, ९।६ बजेतक	१९ ,,	**जानकी-जयन्ती,** शतभिषाका सूर्य दिनमें २। ३३ बजे, **मूल** रात्रिमें ९। ६ बजेसे।
नवमी ,, ३।१३ बजेतक	सोम	ज्येष्ठा ,, ११।३८ बजेतक	२० ,,	**भद्रा** रात्रिमें ४। १० बजेसे, **धनुराशि** रात्रिमें ११। ३८ बजेसे।
दशमी सायं ५।७ बजेतक	मंगल	मूल रात्रिमें १।५६ बजेतक	२१ ,,	**भद्रा** सायं ५। ७ बजेतक, **मूल** रात्रिमें १। ५६ बजेतक।
एकादशी रात्रिमें ६।४४ बजेतक	बुध	पू० षा० ,, ३।५५ बजेतक	२२ ,,	**विजया एकादशीव्रत (सबका)।**
द्वादशी ,, ७।५१ बजेतक	गुरु	उ० षा० रात्रिशेष ५।२७ बजेतक	२३ ,,	**मकरराशि** दिनमें १०। १७ बजेसे।
त्रयोदशी ,, ८।३२ बजेतक	शुक्र	श्रवण अहोरात्र	२४ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ८। ३२ बजेसे, **प्रदोषव्रत, महाशिवरात्रिव्रत।**
चतुर्दशी ,, ८।४२ बजेतक	शनि	श्रवण प्रातः ६।२८ बजेतक	२५ ,,	**भद्रा** दिनमें ८। ३७ बजेतक, **कुम्भराशि** रात्रिमें ६। ४४ बजेसे, **पंचकारम्भ** रात्रिमें ६। ४४ बजे।
अमावस्या ,, ८।१९ बजेतक	रवि	धनिष्ठा ,, ६।५९ बजेतक	२६ ,,	**अमावस्या।**

सं० २०७३, शक १९३८, सन् २०१७, सूर्य उत्तरायण, शिशिर-ऋतु, फाल्गुन शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ७।२८ बजेतक	सोम	शतभिषा प्रातः ७।२ बजेतक	२७ फरवरी	**मीनराशि** रात्रिमें १२। ४३ बजेसे।
द्वितीया सायं ६।११ बजेतक	मंगल	पू० भा० ,, ६।३६ बजेतक उ० भा० रात्रिशेष ५।५० बजेतक	२८ ,,	**मूल** रात्रिशेष ५। ५० बजेसे।
तृतीया ,, ४।५७ बजेतक	बुध	रेवती ,, ४।४३ बजेतक	१ मार्च	**भद्रा** रात्रिमें ३। ३५ बजेसे, **मेषराशि** रात्रिशेष ४। ४३ बजेसे, **पंचक समाप्त** रात्रिशेष ४। ४३ बजे।
चतुर्थी दिनमें २।३५ बजेतक	गुरु	अश्विनी रात्रिमें ३।२० बजेतक	२ ,,	**भद्रा** दिनमें २। ३५ बजेतक, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, मूल** रात्रिमें ३। २० बजेतक।
पंचमी ,, १२।२६ बजेतक	शुक्र	भरणी ,, १।४६ बजेतक	३ ,,	× × × ×
षष्ठी ,, १०।६ बजेतक	शनि	कृत्तिका ,, १२।६ बजेतक	४ ,,	**वृषराशि** दिनमें ७। २० बजेसे, पूर्वाभाद्रपदका सूर्य रात्रिमें ८। ६ बजे।
सप्तमी प्रातः ७।४३ बजेतक अष्टमी रात्रिशेष ५। २० बजेतक	रवि	रोहिणी ,, १०। २६ बजेतक	५ ,,	**भद्रा** दिनमें ७। ४३ बजेसे रात्रिमें ६। ३२ बजेतक, **होलाष्टकारम्भ।**
नवमी रात्रिमें ३।३ बजेतक	सोम	मृगशिरा ,, ८।४९ बजेतक	६ ,,	**मिथुनराशि** दिनमें ९। ३७ बजेसे।
दशमी ,, १२।५६ बजेतक	मंगल	आर्द्रा ,, ७।२२ बजेतक	७ ,,	× × × ×
एकादशी ,, ११। ३ बजेतक	बुध	पुनर्वसु सायं ६।९ बजेतक	८ ,,	**भद्रा** दिनमें ११।५९ बजेसे रात्रिमें ११।३ बजेतक, **कर्कराशि** दिनमें १२।२७ बजसे, **आमलकी एकादशीव्रत (सबका), रंगभरी एकादशीव्रत।**
द्वादशी ,, ९।३२ बजेतक	गुरु	पुष्य ,, ५। १६ बजेतक	९ ,,	**मूल** सायं ५। १६ बजेसे।
त्रयोदशी ,, ८।२२ बजेतक	शुक्र	आश्लेषा ,, ४। ४२ बजेतक	१० ,,	**सिंहराशि** सायं ४। ४२ बजेसे, **प्रदोषव्रत।**
चतुर्दशी ,, ७।३९ बजेतक	शनि	मघा ,, ४। ३४ बजेतक	११ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ७। ३९ बजेसे, **मूल** सायं ४। ३४ बजेतक।
पूर्णिमा ,, ७।२५ बजेतक	रवि	पू० फा० ,, ४।५५ बजेतक	१२ ,,	**भद्रा** दिनमें ७। ३२ बजेतक, **कन्याराशि** रात्रिमें ११। ८ बजेसे, **पूर्णिमा, होलिकादाह** सूर्यास्तके बाद रात्रिमें ७। २५ बजेके पहले।

कृपानुभूति

(१)

हनुमान्‌जीकी जीवनदायिनी कृपा

घटना २७ अक्टूबर २०१४ ई० की है, मैं अपने घर शालीमार गार्डनसे हरिद्वार अपनी कारद्वारा आ रहा था। मैं सप्ताहके अन्तमें बच्चोंसे मिलने आता हूँ और पुन: सोमवारको सुबह लगभग ५ बजे हरिद्वारको प्रस्थान करता हूँ। जब भी मैं कभी यात्रा प्रारम्भ करता हूँ तो श्रीहनुमानचालीसा पढ़ना मेरी आदत है। इस बार हमारे साथ हमारे पड़ोसीके रिश्तेदार भी थे, जिन्हें मेरठ जाना था, आदतन मैंने गाड़ी स्टार्ट करते ही श्रीहनुमानचालीसा पढ़ना प्रारम्भ कर दिया।

साधारणतया मैं कारकी गति ५०-६० कि० मी० ही अधिकतम रखता हूँ और आज भी लगभग इतनी ही गतिसे हम जा रहे थे। सहसा मैंने देखा कि एक खराब पेट्रोल टैंकर बीच सड़कपर खड़ा है। यह देख मैंने गति कमकर गाड़ी रोक दी। तभी अचानक एक बड़ी कारने बहुत ही तेज गतिसे आकर हमें पीछेसे टक्कर मार दी, जिससे हम कारसहित टैंकरमें घुस गये। हमारी गाड़ी उसमें फँस गयी और पीछेसे भी बुरी तरहसे क्षतिग्रस्त हो गयी। हमारे निकलनेके सारे रास्ते बन्द हो गये, चारों खिड़कियाँ क्षतिग्रस्त होनेके कारण खुल नहीं रही थीं। अँधेरा एवं सुनसान होनेके कारण कोई हमारी करुण पुकार भी नहीं सुन पा रहा था। किंतु तभी एक व्यक्ति आया और उसने हमारी कारका जो दरवाजा कम क्षतिग्रस्त था, बाहरसे खोला और हम बाहर निकले। मुझे बहुत ही मामूली चोट आयी और मेरे सहयोगीको बिलकुल नहीं। मैं तो मानता हूँ कि ये सब हनुमन्तलालके कीर्तन और हनुमानचालीसा-पाठका ही प्रभाव है। मैंने फिर पुलिसको इत्तला दी और क्रेनद्वारा कारको ट्रकके नीचेसे निकलवाया। पुलिसवालोंके कहनेपर भी मैंने किसीके खिलाफ कोई कानूनी कार्यवाही नहीं की, बल्कि मैं उन सज्जनको ढूँढ़ रहा था, जिन्होंने हमारी कारका दरवाजा खोला, किंतु वे कहीं दिखायी नहीं दिये। शायद वे भी हनुमान्‌जीकी प्रेरणासे ही आये थे।

आज इस घटनाको दो वर्षसे भी अधिक हो गया है, किंतु मुझे लगता है कि जैसे अभी-अभी सब कुछ हुआ है। मैं श्रीहनुमान्‌जीकी कृपाका मन-ही-मन धन्यवाद करता रहता हूँ, जिससे मुझे नया जीवन मिला।—**डॉ० देवदत्त लवानिया**

(२)

श्रीहनुमान्‌जीने पुकार सुनी

घटना पुरानी है, एक उच्चाधिकारी महोदय तीर्थयात्राके उद्देश्यसे श्रीचित्रकूट स्टेशनपर उतरे। ताँगा या किसी सवारीके अभावमें बच्चोंको दो मजदूरोंने लिया और अधिकारी महोदयकी धर्मपत्नीने एक बच्चेको स्वयं अपनी गोदमें लेकर प्रस्थान किया। वहाँसे चलकर पयस्विनीजीके तटपर पहुँचनेपर अधिकारी महोदयने कहा कि 'पहले मैं स्नान कर लूँ, फिर और लोगोंको स्नान करा दूँगा।' वे चले गये। श्रीमतीजीने सोचा कि 'मैं भी नहा लूँ' और छोटे बच्चेको लेकर वे भी स्नानके लिये चलीं। बच्चेको किनारेपर बैठाकर वे गंगाजीमें स्नान करने लगीं। वे स्नान करनेमें तन्मय हो गयीं। बच्चेका ध्यान नहीं रहा। इसी समय वह किनारेपर बैठा हुआ बच्चा नदी में खिसक गया। बच्चेका ध्यान आते ही देखा तो वह जहाँ बैठा था, वहाँ नहीं दिखायी दिया। अब तो वे बड़े जोरसे रोने-चिल्लाने लगीं। मजदूर भी दौड़े, अधिकारी महोदयने सुना तो वे भी दौड़े, बच्चेको ढूँढ़ा, पर कहीं पता न लगा।

इधर माता जब बच्चेके लिये बेचैन होकर रो रही थीं, तभी उनका ध्यान श्रीभगवान्‌की कृपा-सुधाकी ओर गया। उन्होंने रोते-रोते ही कहा—'भगवन्! चित्रकूट आनेपर तो दु:ख दूर होते हैं, मुझे यह महान् दु:ख क्यों मिला?' उनका विलाप बढ़ता ही गया। वे जोरसे रोकर हाथ उठाकर कहने लगीं—'हे हनुमान्‌जी! तुम्हें श्रीरामजीकी दुहाई है, मेरे लड़केको ढूँढ़कर तुरंत ला दो।' इस करुण प्रार्थनाको सुनकर एक मोटा-ताजा बन्दर पासके वृक्षसे गंगाजीमें कूद पड़ा और उसने कुछ ही देरमें बच्चेका हाथ पकड़कर लाकर किनारेपर बैठा दिया। उस बन्दरको केवल उन श्रीमान् अधिकारी महोदय, उनकी श्रीमतीजी तथा पासके सज्जनोंने ही देखा और उसी समय वह बन्दर अदृश्य भी हो गया। उन दोनोंके हर्षका पार न रहा। उन्होंने बच्चेके मिलनेकी प्रसन्नतामें चित्रकूटकी अपार महिमाका वर्णन किया। बच्चों तथा बन्दरोंको मिठाई बाँटी गयी, तत्पश्चात् वे चित्रकूटजीकी परिक्रमा करके अपने पूर्वनिश्चित स्थानपर चले गये। मैं भी उस समय गंगाजीमें स्नान कर रहा था, किंतु वहाँसे पर्याप्त दूर था। इसलिये मैं उस बन्दरको न देख पाया।—**रामेश्वरप्रसादजी गुप्त**

पढ़ो, समझो और करो

(१)

अजनबीकी सेवाका उत्कृष्ट उदाहरण

गत ५ अप्रैल २०१५ ई० को मैं सपत्नीक महाकालकी नगरी उज्जैनकी यात्रापर गया था। महाकालकी पूजा-अर्चना पूरी करके अगले दिन ओंकारेश्वर ज्योतिर्लिंगके दर्शनहेतु हम इन्दौर गये। वहाँ बस-स्टैण्डके पास ही एक होटलमें ठहरे, अगले दिन सबेरे ही हम ओंकारेश्वरकी यात्रापर चले, मान्धाताद्वीप पहुँच हमने ओंकारेश्वर ज्योतिर्लिंग एवं ममलेश्वर ज्योतिर्लिंगकी पूजा-अर्चना की तथा वहाँसे हम बस स्टॉपपर आ गये। सबेरेसे कुछ खाया-पिया नहीं था तो सोचा बस स्टॉपपर खा लेंगे, परंतु ११:३० बजेवाली इन्दौर जानेवाली बस तैयार खड़ी थी। प्यास बहुत लगी थी तो स्टॉपपर ही एक शिकंजीवालेसे दो गिलास शिकंजी पी ली और बसमें बैठ गये। करीब २ बजे हम इन्दौर पहुँच गये। वहीं होटलके पास ही एक गुजराती रेस्टोरेन्टमें हमने खाना खाया और होटलमें वापस आ गये।

अभी एक घण्टा बीता होगा, अचानक मेरे पेटमें दर्द-सा हुआ और मुझे उल्टी हो गयी, फिर दस्त हुआ। कुछ देर बाद तो फिर वही क्रम आरम्भ हो गया, मुझे हैजा (डायरिया) हो गया और इस तरह लगातार उल्टी-दस्तोंसे मेरा शरीर निर्जीव-सा हो गया। बुढ़ापेके शरीरमें सहनशक्ति समाप्त होने लगी। पत्नी पासके मेडिकल स्टोरसे हाल बताकर दवा लायी, उससे भी आराम नहीं मिला और पानी भी पिया तो वह भी नहीं पचा, अब मेरी बिगड़ती स्थिति देख पत्नीने होटलमें काम करनेवाले युवकसे किसी डॉक्टरको बुला लानेको कहा—वह युवक थोड़ी देर बाद लौटा, बोला—ऑन्टीजी! ९ बजे हैं, इस समय डॉक्टरोंकी दुकानें बन्द हो गयी हैं। कोई डॉक्टर उपलब्ध नहीं है। पत्नीने फिर कहा कि कोई अस्पताल निकटमें हो तो वहीं ले चलो। इसपर वह युवक बोला, 'मैं अभी आता हूँ।' वह अपने एक मित्रको साथ लेकर आया और बोला—'अंकलको अस्पताल ले चलना है। एक ऑटो ले आओ', थोड़ी ही देरमें ऑटो आ गया। दोनों युवकोंने मुझे सहारा देकर ऑटोमें बिठाया और ड्राइवरसे बोले—'महाराजा यशवन्तराव हॉस्पिटल चलो। हम मोटर साइकिलसे आते हैं।' दोनों युवकोंने अस्पताल पहुँचकर मुझे सहारा देकर इमरजेन्सी वार्डमें पहुँचाया तथा वहाँ उपस्थित डॉक्टरसे प्रार्थना की कि आप हमारे अंकलको देख लें, इनकी हालत बहुत खराब है।

डॉक्टरने तुरन्त मेरा चेकअप करके मुझे बेडपर लेटनेको कहा—मुझे एक इन्जेक्शन देकर उन्होंने अपने असिस्टेन्टको कहा कि इन्हें तुरन्त ग्लूकोजकी बोतल चढ़ाओ। मुझे ग्लूकोज चढ़ानेके बाद पत्नीने उन युवकोंसे खाना खा लेनेको कहा। वे बोले, 'हम खाना खा लेंगे, पहले अंकलका इलाज तो आरम्भ हो जाय।'

ग्लूकोजकी एक बोतल चढ़ाते ही मुझे सर्दी लगने लगी, मैं ठण्डसे काँपने लगा। पत्नीने वार्डमें कम्बल माँगा तो पता चला कि गर्मियोंमें कम्बल स्टोर में जमा हो गये हैं। कम्बल बाहर उपलब्ध नहीं हो सका। दोनों युवक वहींपर थे, वे बोले, 'हम होटल जाकर वहाँसे कम्बल ले आते हैं।' होटल वहाँसे ४-५ किलोमीटर दूर था। थोड़ी देर बाद ही वे कम्बल ले आये, मुझे चैन मिला। दोनों युवक रात्रिके ४ बजेतक वहीं मेरी देखभालमें लगे रहे। तीन-चार बोतल ग्लूकोज चढ़ा तो मुझे नींद आ गयी। थोड़ी देर बाद डॉक्टरने मेरा चेकअप करके कहा—'अब इनकी हालत ठीक है, आप चाहें तो इन्हें ले जा सकते हैं।'

अस्पतालके वातावरणसे मुझे वैसे ही घबराहट हो रही थी, मैंने चलनेके लिये कहा। थोड़ी देरमें हम होटल आ गये। होटल आनेपर मुझे गहरी नींद लगी और मैं सबेरे ९ बजे उठा तो वे दोनों युवक मेरा हाल जाननेके लिये पुनः आये। मैंने उन्हें हृदयसे धन्यवाद दिया कि आपने जो उत्कृष्ट सेवाका परिचय दिया, वह अत्यन्त सराहनीय है और मैं आजीवन आपका आभारी रहूँगा।

मैंने पत्नीसे उन्हें १००-१०० रुपये देनेका कहा तो दोनों हाथ जोड़ने लगे, आप हमारे दादाके समान हो, आप कुछ मत दीजिये। मैंने कहा यदि तुम मुझे दादा समझ रहे तो दादाका कहा भी तो मानो, मेरी छोटी-सी भेंट स्वीकार नहीं करोगे तो मुझे दुःख होगा। वे मान गये और उन्होंने मेरे पैर छूकर कहा हमें आशीर्वाद दीजिये, मैंने उन्हें हृदयसे आशीर्वाद दिया।

अस्पताल जानेसे पहले मैं लेटा-लेटा 'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे' का जप कर रहा था और अवश्य ही मेरे प्रभु रामने मेरी पुकार सुनकर अपने देवदूतोंके रूपमें उन युवकोंको मेरे पास भेज दिया, एक अजनबीकी सेवाका ऐसा उत्कृष्ट उदाहरण मैंने पहले नहीं देखा था। सचमुच, मेरे रामद्वारा भेजे गये वे दोनों देवदूतोंसे कम नहीं थे। मैं आज भी उनका हृदयसे आभार मानकर उन्हें कोटि-कोटि आशीर्वाद देता हूँ, वे जहाँ भी रहें सुख से रहें, तरक्की करते रहें।—**आनन्द प्रकाश गौतम**

(२)

करनीका फल

घटना लगभग दस साल पुरानी है, जो मेरी आँखोंके सामने घटी थी। उसे याद करके आज भी मेरा सिर गोमाताके चरणोंमें झुक जाता है।

वर्षाका मौसम था और उस समय सीमान्त इलाकेमें पशुओंकी तस्करी बड़े जोरोंसे चल रही थी। तस्करोंका जाल-सा बिछा था। वे ड्यूटीपर रहनेवाले जवानोंकी कमजोरी ढूँढ़ते हैं। फोर्समें भी सब प्रकारके इंसान पाये जाते हैं। सभीको बार-बार यही समझाया जाता है कि किसी प्रकारकी तस्करी नहीं करनी है, दोषी लोगोंको सख्त दण्ड मिलेगा। पशुओंपर हो रहे घोर अत्याचारोंकी सी०डी० और छायाचित्र दिखाये जाते, परंतु इतना करनेपर भी कुछ लोग लालचमें आ ही जाते।

हमारे बीचमें साँपला गाँव जिला रोहतक (हरियाणा)-का एक कमाण्डर ड्यूटीपर था। उसपर पैसा कमानेका जुनून सवार रहता। तस्करोंसे उसकी अच्छी दोस्ती थी। उसके कार्यसे काफी जवान परेशान थे कि पशु-हत्याका पैसा खाता है। कुछ कार्मिक भी उसका साथ देते। वह सैकड़ों गायें और बैल अपने सामने ही तस्करोंद्वारा सीमापार निकलवा देता और मोटी रकम आपसमें बाँट लेता, जिसमें गुप्तचरोंका भी हिस्सा रख देता।

वह डण्डा मारकर खुद पशुओंको दौड़ाता और गुस्सेमें सींग तोड़ डालता, पूँछ काट देता या गुप्तांगोंपर एसिड/पेट्रोल डाल देता, ताकि पशु बहुत तेजीसे सीमापार भाग जाय। मैंने उससे बहुत कहा कि यह अनुचित और पाप है, पर रुपयेके लालचमें वह नहीं माना। मुझसे यह अत्याचार देखा न गया, पर कर भी कुछ नहीं सकता था। अन्तमें ऊपर बताकर मैंने मुख्यालयमें बदली करवा ली। साथमें कई जवानोंने भी बदली करवा ली। अब तो उसका एकच्छत्र राज्य हो गया। तस्करोंसे मिलकर खूब मांस और शराबका सेवन होता और मोटी रकम हर महीने घर भेजी जाती। नयी बछिया-बछड़ोंका रस्सीसे मुँह बाँधकर रेड़ीपर लादकर ऊपरसे तिरपाल बाँधकर कई-कई रेड़ियाँ भिजवा देता। सरिया गर्म करके गाय-भैंसपर निशान कर देता। हिंसा ही हिंसा! अन्दरका मानव मर गया था। रिपोर्ट करो, कोई नहीं सुनता। प्रूफ दो-सबूत दो—यही कह देते।

× × ×

वार्षिक फायरिंग हर जवानको करनी पड़ती है। ताकि प्रशिक्षण भूल न जाय। लम्बी दूरीतक गोले गिरानेकी क्षमतावाले हथियार इस्तेमाल होते हैं। फायरके दौरान जो गोला मिस हो जाय। उसे इकट्ठा करके गड्ढेमें रखकर अतिरिक्त बारूदसे बर्बाद किया जाता है, ताकि कोई दुर्घटना न हो।

मुख्यालयमें बदली करवानेके एक साल बादकी बात है, तारीख मुझे याद नहीं। फायरिंगमें कोई २० बम (गोले) मिस हो गये थे। उन्हें नष्ट करनेके लिये सक्षम अधिकारीके साथ उसी कमाण्डरको जाना पड़ा। ३ मिनटमें मिस बमोंको अतिरिक्त बारूद बर्बाद कर देती है, आज किंतु पता नहीं क्यों, ३५ मिनटतक कोई हलचल नहीं हुई। सक्षम अधिकारीके साथ वह कमाण्डर पुनः उस जगह गया। हम सभी दूर लेट गये। ५० मीटर दूरी रह गयी। कमाण्डरने अधिकारीको

वापस भेजा और स्वयं आगे बढ़ा, ज्यों ही वह कमाण्डर गड्ढेके पास पहुँचा, जबरदस्त दो धमाके हुए, जैसे आसमान हिल गया। धरती काँप गयी। एक ही साथ २० बम फट गये—बर्बाद हो गये, उसीमें उस कमाण्डरका नामोनिशान मिट गया। बहुत खोजबीनकर २०० ग्राम चिथड़े लेकर पुलिसमैन आया। सूचना ऊपर गयी। सब कह रहे थे—गोमाताके हत्यारेका परिणाम देखा! जैसी करनी वैसा फल। घटना देख/सुनकर कुछ जवान कहने लगे—पाप! वह भी घोर पाप—हजारों गायोंकी हत्याका पाप फल देकर ही गया। लिखते समय पूरी घटना मेरे दिमागमें घूम गयी।

—**राजबहादुर शर्मा**

(३)

निष्काम सेवाका सुपरिणाम

यह घटना लगभग १०-१२ वर्ष पुरानी है। मेरे एक मित्र हैं श्रीतोमरजी। उनका निवास मेरे मुहल्लेके समीप ही है। एक दिन वे और उनका छोटा पुत्र मेरे पास आये। तोमरजीने बतलाया कि मेरी पुत्रवधूका चयन माध्यमिक विद्यालयहेतु आयोगसे हो गया है और अलीगढ़ जिला दिया गया है। आयोगमें यह नियम है कि यदि किसी अन्य जिलेमें स्थानान्तरण करवाना हो तो उस विद्यालयसे एक प्रस्ताव पास कराकर जिला विद्यालय निरीक्षकके माध्यमसे आयोग सचिवको भेज दिया जाय। पुत्रवधूका विषय गणित और साइंस था। मुझे स्मरण आया कि एक प्रधानाचार्यजीने मुझसे साइंस-गणितके लिये शिक्षक देनेको कहा था। मैंने उनको फोन किया तो उन्होंने बतलाया कि अभी जगह खाली है। उन्होंने प्रस्ताव बनवाकर प्रबन्ध-समितिसे पास कराकर जिला विद्यालय निरीक्षकके पास भिजवा दिया। वहाँपर ऑफिसवालोंने बतलाया कि वह पद आरक्षित है। उसपर नियुक्ति नहीं हो सकती है। उन्होंने एक विद्यालयका नाम बतलाया, जहाँ पद रिक्त है और आरक्षित नहीं है। वहाँसे प्रस्ताव पास कराकर आयोगको भेज दिया गया। उस बीच आयोगके चयनपर प्रतिबन्ध था। कुछ माह बाद प्रतिबन्ध समाप्त हुआ और आयोगने उसे उस विद्यालयमें नियुक्तिहेतु भेज दिया। उस बीच उस विद्यालयकी प्रबन्ध-समिति बदल चुकी थी और प्रबन्धक उन्हें लेनेके लिये तैयार नहीं थे। मेरे मित्र तथा उनका पुत्र बहुत परेशान था।

एक दिन उनके पुत्रको ज्ञात हुआ कि प्रबन्ध-समितिकी बैठक शीघ्र ही होनेवाली है। यद्यपि उस प्रबन्ध-समितिमें उसका कोई परिचय नहीं था, फिर भी ईश्वरकी प्रेरणासे वह वहाँ गया और बरामदेमें टहलने लगा। बैठकमें एक महिला सदस्य भी थीं। उन्होंने देखा कोई लड़का बाहर टहल रहा है। उन्होंने उसे गौरसे देखा और अन्दर बुलाया तथा पूछा कि तुमने कभी किसीको ब्लड (रक्त) दिया है? उसने कहा—नहीं। वह फिर बोली, 'आजसे ८-९ वर्ष पूर्व, जरा याद करो।' उसे याद आया और कहा 'हाँ, मेरे एक मित्रने कहा था, तो दे दिया था।' महिलाने पूछा—यहाँ क्यों आये हो? उसने संक्षेपमें कारण बतलाया। महिलाने एक कागजपर अपना नाम और पता लिख दिया और कहा कि शामको घरपर आना।

शामको लड़का घर पहुँचा, तब महिलाने बतलाया कि तुमने जिसको खून दिया था, वे मेरे पति हैं। विद्यालयके मैनेजर उनके जेठ थे। महिलाने प्रबन्धकको फोन किया और कहा 'भाई साहब, आयोगसे जिस महिलाका चयन होकर आया है, उसके पतिने ही आपके भाईकी जान ८-१० वर्ष पूर्व बचायी थी। उसने ही खून दिया था। अतः कृपया उसका कार्य कर दें तथा उसकी पत्नीको ज्वाइन करवा लें। वह तो भूल गया था, मुझे ही उसका चेहरा याद आया।' मैनेजर साहबने दूसरे ही दिन उसकी पत्नीको ज्वाइन करवा दिया।

यह घटना निष्काम कर्मयोगका फल बतलाती है। उस निष्काम कर्मयोगका फल पता नहीं क्या और कब मिले, पर मिलेगा जरूर। मैं उस घटनासे अधिक प्रभावित हुआ तथा अन्य लोगोंको भी निष्काम कर्म करनेहेतु प्रेरित करता रहता हूँ।—**रमाकान्त शुक्ल**

मनन करने योग्य

चाटुकारिता अनर्थकारिणी है

बड़ी मीठी लगती है चाटुकारिता और एक बार जब चाटुकारोंकी मिथ्या प्रशंसा सुननेका अभ्यास हो जाता है, तब उनके जालसे निकलना कठिन होता है। चाटुकार लोग अपने स्वार्थकी सिद्धिके लिये बड़े-बड़ोंको मूर्ख बनाते रहते हैं और आश्चर्य यही है कि अच्छे लोग भी उनकी झूठी प्रशंसाको सत्य मानते रहते हैं!

चरणाद्रि (चुनार) उन दिनों करूषदेशके नामसे विख्यात था। वहाँका राजा था पौण्ड्रक। उसको चाटुकार सभासद् कहते थे—'आप तो अवतार हैं। आप ही वासुदेव हैं। भूभार दूर करनेके लिये आप साक्षात् नारायणने अवतार धारण किया है। आपकी सेवा करके हम धन्य हो गये। जो आपका दर्शन कर पाते हैं, वे भी धन्य हैं।'

पौण्ड्रक इन चाटुकारोंकी मिथ्या प्रशंसामें ऐसा भूला कि उसने अपनेको वासुदेव कहना प्रारम्भ किया। वह दो कृत्रिम हाथ लगाकर चतुर्भुज बना रहने लगा और शंख, चक्र, गदा तथा कमल उन हाथोंमें लिये ही रहनेका उसने अभ्यास कर लिया। अपने रथकी पताकापर उसने गरुडका चिह्न बनवाया। बात यहींतक रहती, तब भी कोई हानि नहीं थी; किंतु उसने तो गर्वमें आकर दूत भेजा द्वारका। श्रीकृष्णचन्द्रके पास यह सन्देश भेजा उसने—'कृष्ण! मैं ही वासुदेव हूँ। भूभार दूर करनेके लिये मैंने ही अवतार धारण किया है। यह बहुत अनुचित बात है कि तुम भी अपनेको वासुदेव कहते हो और मेरे चिह्न धारण करते हो। तुम्हारी यह धृष्टता सहन करने योग्य नहीं है। तुम वासुदेव कहलाना बन्द करो और मेरे चिह्न छोड़कर मेरी शरण आ जाओ। यदि तुम्हें यह स्वीकार न हो तो मुझसे युद्ध करो।'

द्वारकाकी राजसभामें दूतने यह सन्देश सुनाया तो यादवगण देरतक हँसते रहे पौण्ड्रककी मूर्खतापर। श्रीकृष्णचन्द्रने दूतसे कहा—'जाकर कह दो पौण्ड्रकसे कि युद्ध-भूमिमें मैं उसपर अपने चिह्न छोड़ूँगा।'

पौण्ड्रकको गर्व था अपनी एक अक्षौहिणी सेनाका। अकेले श्रीकृष्णचन्द्र रथमें बैठकर करूष पहुँचे तो वह पूरी सेना लेकर उनसे युद्ध करने आया। उसके साथ उसके मित्र काशीनरेश भी अपनी एक अक्षौहिणी सेनाके साथ आये थे। पौण्ड्रकने दो कृत्रिम भुजाएँ तो बना ही रखी थीं, शंख-चक्र-गदा-पद्मके साथ नकली कौस्तुभ भी धारण किया था उसने। नटके समान बनाया उसका कृत्रिम वेश देखकर श्रीकृष्णचन्द्र हँस पड़े।
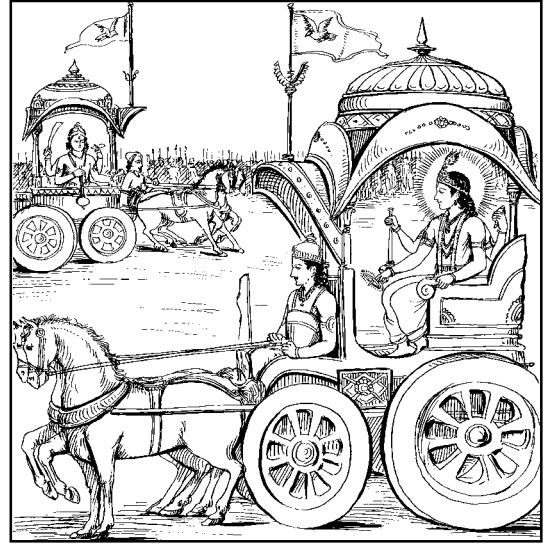
पौण्ड्रक और काशिराजकी दो अक्षौहिणी सेना तो शार्ङ्गसे छूटे बाणों, सुदर्शन चक्रकी ज्वाला और कौमोदकी गदाके प्रहारमें दो घण्टे भी दिखायी नहीं पड़ी। वह जब समाप्त हो गयी, तब द्वारकाधीशने पौण्ड्रकसे कहा—'तुमने जिन अस्त्रोंके त्यागनेकी बात दूतसे कहलायी थी, उन्हें छोड़ रहा हूँ। अब सम्हलो!'

गदाके एक ही प्रहारने पौण्ड्रकके रथको चकनाचूर कर दिया। वह रथसे कूदकर पृथ्वीपर खड़ा हुआ ही था कि चक्रने उसका मस्तक उड़ा दिया। उस चाटुकारिताप्रिय मूर्ख एवं पाखण्डीका साथ देनेके कारण काशिराज भी युद्धमें मारे गये। [श्रीमद्भागवत-महापुराण]

॥ श्रीहरिः ॥

(भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और सदाचार-सम्बन्धी सचित्र मासिक पत्र)

'कल्याण'

-के ९०वें वर्ष (वि०सं० २०७२-७३, सन् २०१६ ई०)-के दूसरे अङ्कसे बारहवें अङ्कतकके

निबन्धों, कविताओं और संकलित सामग्रियोंकी वार्षिक विषय-सूची

(विशेषाङ्ककी विषय-सूची उसके आरम्भमें देखनी चाहिये, वह इसमें सम्मिलित नहीं है।)

निबन्ध-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या

पद्य-सूची

संकलित-सामग्री